'आषाढ़-श्रावण' वि. सं. २०८२ (जुलाई २०२५ ई.)

मान मंदिर बरसाना

मासिक पत्रिका – वर्ष ०९, अंक ०७, श्री कृष्ण सं. ५२५१

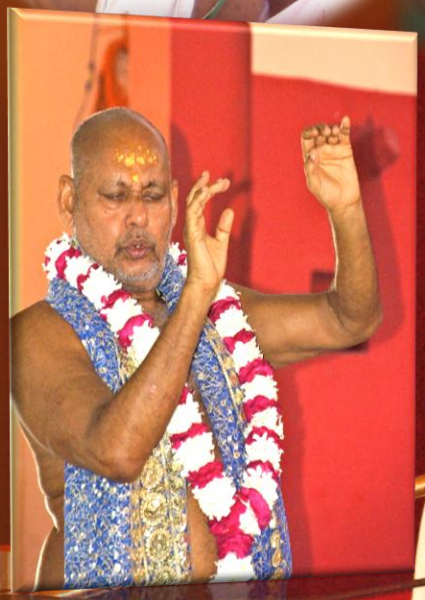

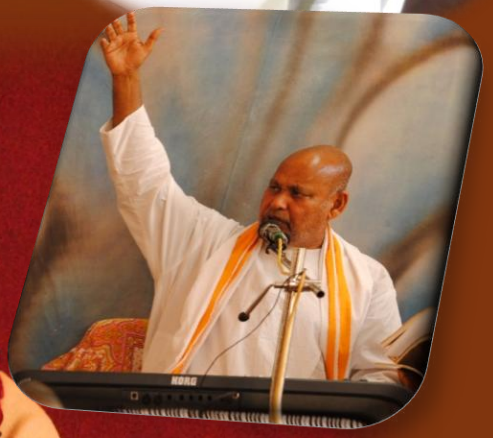

विशेष ;-
१. गुरुपूर्णिमा,
२.जगन्नाथ
भगवान्
की रथयात्रा

मूल्य १०/-

गुरुपूर्णिमा (२०२५) के उपलक्ष्य में श्रीजी संगीत विद्यालय (मानमंदिर) की छात्राओं द्वारा श्री अक्षय युगल सरकार के समक्ष शास्त्रीय-नृत्य की प्रस्तुति की गई

अनुक्रमणिका

	विषय- सूची	पृष्ठ- संख्या
१	सफलता का रहस्य 'संकीर्तन'	०५
२	'गौ-महिमा' के ज्ञान से 'गौसेवा-रक्षा' का भावोदय	०६
३	श्रीभक्तिपथ-प्रदर्शक ही 'सद्गुरु'	०७
४	सत्संग का प्रभाव	१३
५	सबसे बड़ी शक्ति 'श्रीभावभक्ति'	१६
६	असली आश्रय 'आराधना'	१८
७	संकीर्तन का संप्रभाव	२१
८	भाव-विह्वलकारिणी 'ब्रजलीला'	२३
९	परम मंगलकारिणी 'श्रीजगन्नाथ-रथयात्रा'	२९
१०	श्रीब्रजभावित रहनी	३१

।। राधे किशोरी दया करो ।।

हमसे दीन न कोई जग में,
बान दया की तनक ढरो ।
सदा ढरी दीनन पै श्यामा,
यह विश्वास जो मनहि खरो ।
विषम विषयविष ज्वालमाल में,
विविध ताप तापनि जु जरो ।
दीनन हित अवतरी जगत में,
दीनपालिनी हिय विचरो ।
दास तुम्हारो आस और की,
हरो विमुख गति को झगरो ।
कबहूँ तो करुणा करोगी श्यामा,
यही आस ते द्वार पर्‌यो ।

INSTAAL करें --- PLAY STORE से-----

MAANINI APP

बाबाश्री के सत्संग/कीर्तन/भजन, साहित्य, आदि यहाँ से FREE - DOWNLOAD कर सकते हैं व सुन सकते हैं ।

श्रीमानमंदिर की वेबसाइट www.maanmandir.org के द्वारा आप प्रातःकालीन सत्संग का ७.३० से ८:३० बजे तक तथा संध्याकालीन संगीतमयी आराधना का सायं ६:०० से ८:०० बजे तक प्रतिदिन लाइव प्रसारण देख सकते हैं ।

संरक्षक- श्रीराधामानबिहारीलाल ,
प्रकाशक – राधाकान्त शास्त्री, मानमंदिर ,गह्वरवन,
बरसाना, मथुरा (उ.प्र.)
mob. राधाकांत शास्त्री 9927338666,
Website :www.maanmandir.org
(E-mail :info@maanmandir.org)

परम पूज्यश्री रमेश बाबा महाराज जी द्वारा सम्पूर्ण भारत को आह्वान –
"मजदूर से राष्ट्रपति और झोंपड़ी से महल तक रहने वाला प्रत्येक भारतवासी विश्वकल्याण के लिए गौ-सेवा-यज्ञ में भाग ले ।"
*** योजना ***
अपनी आय से १ रुपया प्रति व्यक्ति प्रतिदिन निकालें व मासिक, त्रैमासिक, अर्धवार्षिक अथवा वार्षिक रूप से इकट्ठा किया हुआ सेवाद्रव्य किसी विश्वसनीय गौसेवा प्रकल्प को दान कर गौरक्षा कार्य में सहभागी बन अनन्त पुण्य का लाभ लें । हिन्दूशास्त्रों में अंशमात्र गौसेवा की भी बड़ी महिमा का वर्णन किया गया है ।

विशेष:- इस पत्रिका को स्वयं पढ़ने के बाद अधिकाधिक लोगों को पढ़ावें जिससे आप पुण्यभाक् बनें और भगवद्-कृपा के पात्र बनें । हमारे शास्त्रों में भी कहा गया है – **सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ । जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि ।।**(श्रीमद्भागवत३/७/४१)
अर्थ:- भगवत्तत्त्वके उपदेश द्वारा जीव को जन्म-मृत्यु से छुड़ाकर उसे अभय कर देने में जो पुण्य होता है, समस्त वेदों के अध्ययन, यज्ञ, तपस्या और दानादि से होनेवाला पुण्य उस पुण्य के सोलहवें अंश के बराबर भी नहीं हो सकता ।

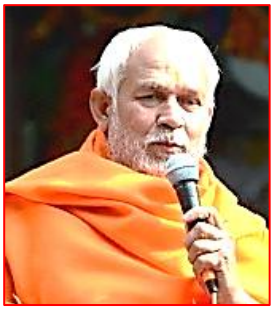

प्रकाशकीय

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः ।

गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

'गुरु' तो साक्षात् 'भगवान्' ही होता है । गुरु ही ब्रह्मा है, गुरु ही विष्णु है, गुरु ही शिव है किन्तु 'गुरु' साक्षात् परब्रह्म, साक्षात् भगवान् भी है । सारा संसार इस श्लोक को गाता है किन्तु कोई-कोई ही वास्तविक तत्त्व रूप से समझ पाता है । ब्रह्मा, विष्णु और शंकर – ये तीनों गुरु हैं परन्तु एक चौथा परम गुरु है 'भगवान्' । इस बात को बहुत सावधानी से ध्यानपूर्वक समझने की आवश्यकता है – 'ब्रह्मा, विष्णु और शंकर' रूपी गुरु के अलावा एक गुरु और है; वह साक्षात् परब्रह्म 'भगवान्' है जो सबसे बड़ा गुरु है । अगर ब्रह्माजी नहीं हों तो क्या करेगा मनुष्य, विष्णुजी न हों तो क्या करेगा जीव, शंकरजी नहीं हों तो क्या वह (शरणागत जीव) निराश होकर बैठा रहेगा ? नहीं, बैठो मत; **'गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः'** – साक्षात् भगवान् को गुरु मान लो । इस बात को एकलव्य ने प्रत्यक्ष करके दिखा दिया । एकलव्य भील जाति का था, जो सबसे नीच जाति मानी जाती है; वह जंगल में रहता था । एकबार वह गुरुदेव श्रीद्रोणाचार्यजी के पास गया और बोला कि मुझे धनुर्विद्या सिखा दीजिये । द्रोणाचार्यजी ने कहा – 'नहीं, तू भील है, नीच जाति का है, तुझे मैं धनुर्विद्या नहीं सिखाऊँगा ।' इस तरह द्रोणाचार्यजी ने उसे फटकारकर भगा दिया । एकलव्य को बड़ा दुःख हुआ, उसने सोचा कि संसार के सबसे बड़े धनुर्वेद के ज्ञाता द्रोणाचार्यजी और इन्होंने मुझे फटकार दिया, अब मैं क्या करूँ ? किन्तु वह निराश नहीं हुआ, वह सघन वन में गया और वहाँ उसने मिट्टी की गुरु द्रोणाचार्यजी की एक मूर्ति बनायी; उसका आशय था कि हे गुरुदेव ! आप भले ही मत सिखाओ, आपके स्वरूप में हम 'भगवान्' को गुरु मानते हैं, वे ही हमें सिखायेंगे । जब 'गुरु' भी निकाल देता है, उस समय 'भगवान्' काम में आता है । ब्रह्मा, विष्णु और शिव – ये तीन गुरु हैं; अगर ये तीनों निकाल दें तो मनुष्य कहाँ जाएगा ? तो शास्त्र में कहा गया कि घबराओ नहीं, साक्षात् 'भगवान्' ही गुरु हैं । ब्रह्मा, विष्णु और शंकर निकाल सकते हैं किन्तु भगवान् नहीं निकालते हैं । वे 'भगवान्' परब्रह्म हैं, जो न ब्रह्मा हैं, न विष्णु हैं और न शिव हैं; 'भगवान्' इन तीनों से अलग हैं । हमारा सनातन धर्म बहुत बढ़िया है, अगर ब्रह्माजी निकाल दें, विष्णुजी निकाल दें, शिवजी निकाल दें तो भी घबराओ मत, श्रीभगवान् हैं । जिसका कोई नहीं है, न ब्रह्मा है, न विष्णु है और न शिव है, उसका 'भगवान्' है । 'गुरु' ही भगवान् है । **"गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः ।"** उस गुरु रूपी भगवान् के पास जाओ, वह कभी नहीं निकालेगा; चाहे ब्रह्माजी निकाल दें, चाहे विष्णुजी निकाल दें और चाहे शंकरजी निकाल दें । 'गुरु तत्व' व्यापक ब्रह्म है, वह नहीं निकालेगा । इसलिए सच्चे गुरुभक्त 'एकलव्य' ने जंगल में गुरु द्रोणाचार्यजी की एक मिट्टी की मूर्ति बनायी और करबद्ध सच्चे भाव से प्रार्थना की – 'हे गुरुदेव ! आपने मुझे निकाल दिया, किन्तु मैं आपसे ही (आपके व्यापक गुरु स्वरूप 'जो साक्षात् भगवान् ही हैं' से) धनुष-बाण चलाने की विद्या सीखूँगा ।' ऐसा कहकर वह धनुष-बाण चलाने की विद्या का अभ्यास करने लगा; उस समय उसको कोई सिखाता नहीं था (वस्तुतः एकलव्य ने सर्वात्मभाव से व्यापक गुरुतत्त्व की 'जो साक्षात् भगवत्स्वरूप ही है' शरण ले ली थी, इसी कारण परम गुरु 'श्रीभगवान्' ने ही अन्तर्यामी रूप से प्रेरणा करते हुए शिक्षा दे करके धनुर्विद्या में परम पारंगत बना दिया ।) आगे चलकर एकलव्य एक अद्वितीय धनुर्योद्धा बन गया, उसके समान धनुष-बाण चलाने में परम निपुण दूसरा कोई नहीं था । इसका मूल कारण था – व्यापक गुरुतत्त्व की शरणागति अर्थात् परब्रह्म स्वरूप परमगुरु 'श्रीभगवान्' की शरणागति । इससे पता चलता है कि एक 'गुरु' कोई और है, जो साक्षात् परब्रह्म है; उसी ने एकलव्य को सिखाया था । स्वयं गुरु द्रोणाचार्यजी ने कहा था कि उस परम 'गुरु' का दरवाजा मैं भी बन्द नहीं कर सकता, वह तो 'गुरुनिष्ठा व भावना' से मिलता है । 'गुरुः साक्षात् परब्रह्म' – श्रीगुरुदेव तो साक्षात् परब्रह्म ही हैं । ब्रह्मा, विष्णु और शिव जिस विद्या को नहीं सिखायेंगे, उसको परब्रह्म 'भगवान्' सिखायेंगे । इसके लिए होनी चाहिए 'सच्ची लगन और अभ्यास' । यत्किंचित् ब्रह्मा, विष्णु और शिव के 'शिष्यगण' असफल हो सकते हैं किन्तु परब्रह्म भगवान् का शरणागत शिष्य कभी भी निष्फल नहीं होगा ।

कार्यकारी अध्यक्ष

राधाकान्त शास्त्री

श्रीमानमन्दिर सेवा संस्थान ट्रस्ट

सफलता का रहस्य 'संकीर्तन'

भावाभिव्यक्ति –

अध्यक्ष – डॉ. श्रीरामजीलालजी शास्त्री,

श्रीमानमंदिर सेवा संस्थान ट्रस्ट

सनातन धर्म के सभी सद्ग्रन्थों में कलियुग की सभी समस्याओं का समाधान एकमात्र श्रीभगवन्नाम-संकीर्तन ही बताया गया है । प्रत्येक कार्य की सिद्धि, सफलता पाने के लिए भी भगवन्नाम-कीर्तन को ही सबसे अधिक शक्तिशाली साधन बताया गया है । श्रीबाबामहाराज ने आज तक अपने पास एक भी पैसा नहीं रखा किन्तु मानमन्दिर से प्रारम्भ किये गए सभी कार्यों की सफलता के लिए उन्होंने केवल भगवन्नाम-कीर्तन का ही साधन अपनाया; चाहे वह ब्रजयात्रा हो, धाम की सेवा के लिए किये गये बड़े-बड़े आन्दोलन हों । श्रीनाम-संकीर्तन के द्वारा ही उन्हें सभी कार्यों में सफलता प्राप्त हुई । श्रीमाताजी गौशाला में गौसेवा की सफलता के लिए भी श्रीबाबामहाराज की कृपा से नाम-कीर्तन चलता है । आधुनिक उपकरणों के द्वारा भी नाम-संकीर्तन की व्यवस्था की गई है । गौशाला के गोष्ठों में जहाँ गायें भूसा खाती हैं, रहती हैं, वहाँ पर स्पीकर के माध्यम से दिन-रात कीर्तन की व्यवस्था की गई है, गायें नाम-कीर्तन सुनने से परमानन्दित हो आशीर्वाद देती हैं और इस तरह संकीर्तन की ध्वनि से गौसेवकों को भी गौसेवा करने में बहुत बड़ा भक्तिमय लाभ प्राप्त होता है । माताजी गौशाला के बीमार गायों के गोष्ठों व अस्पताल में तो हर समय श्रीबाबामहाराज की आवाज में 'राधा नाम' की ध्वनि चलती रहती है, इससे बीमार गायों को बहुत आराम मिलता है । इसके साथ ही वहाँ जो मनुष्यों का अस्पताल है, वहाँ भी स्पीकरों के द्वारा बाबाश्री के सत्संग, पदगान की ध्वनि सभी को सुनायी देती रहती है, इससे बीमार लोगों को और डॉक्टरों को भी बहुत अधिक सुखानुभूति होती है । रोगियों को भगवान् की स्मृति होती है और बीमारी के समय, कष्ट के समय भगवान् की याद करने से अधिक कष्ट को दूर करने का कोई साधन नहीं है । श्रीबाबा द्वारा आरम्भ किये गए प्रभातफेरी के कार्यक्रमों से जन-जन का सहज कल्याण हो रहा है; ब्रज व ब्रज के बाहर हजारों गाँवों में नित्य प्रभात फेरी चल रही है, जिससे जड़-जंगम जीवों का उद्धार हो रहा है । कलियुग में धर्म से सम्बन्धित किसी अच्छे कार्य को करने पर समस्यायें भी बहुत आती हैं किन्तु समस्या आने पर कभी भी भक्तिमय सेवाओं को रोकना नहीं चाहिए, क्योंकि हर तरह की समस्या के निदान व बीमारी की असली औषधि भी 'भगवान् का नाम' ही है, नाम-संकीर्तन से ही सब संकट दूर होते हैं और परम मंगल (कल्याण) होता है । श्रीबाबा महाराज ने समाज कल्याण के, धाम सेवा के जो भी कार्य चलाये, उनमें हजारों समस्यायें आयीं, प्राणघातक हमले तक हुए किन्तु बाबा महाराज ने कभी भी उन कार्यों को रोका नहीं अपितु और दुगने उत्साह के साथ उन कार्यों को फिर से करने की सबको प्रेरणा दी है । इसलिए मेरा पत्रिका के पाठक बन्धुओं से भी विनम्र अनुरोध है कि आप सब लोग अपने मुहल्ले, गाँव, कस्बे, नगर इत्यादि (अपने निवास-स्थली के आसपास क्षेत्र) में नित्य प्रभात फेरी (संकीर्तन की टोली लेकर परिक्रमा) को करना चाहिए । इससे 'नाम-संकीर्तन' सुनने वाले जड़-चेतन समस्त जीवों का कल्याण सहज ही होने लगता है; वे सब भी अति प्रसन्न होकर नाचते-गाते हैं तथा हृदय से आशीर्वाद देते हैं; इस परममंगलकारी आराधना (संकीर्तन-फेरी) के नित्य नियमपूर्वक करने से संत-महापुरुषों व स्वयं श्रीभगवान् की असीम करुणा मिलती है । श्रीचैतन्यचरितामृत में लिखा है कि एकबार श्रीहरिदासठाकुर ने श्रीमहाप्रभुजी से कहा कि हे प्रभु ! आपके द्वारा जो उच्च स्वर में संकीर्तन होता है, इससे जो जड़ (जो न ही सुन सकते हैं, न ही बोल सकते हैं, एक जगह स्थिर हैं; ऐसे) जीव हैं, उनका भी उद्धार हो जाता है । संकीर्तन की ध्वनि जब जड़ जीवों (पहाड़,पत्थर इत्यादि) से टकराती है, तो उनसे भी प्रतिध्वनि निकलती है अर्थात् वे न बोलने वाले जड़ जीव भी 'श्रीनाम भगवान्' की कृपा से प्रतिध्वनि के रूप में नामोच्चारण करते हैं, जिससे उनका सहज कल्याण हो जाता है । इस प्रकार जोर-जोर से 'नाम-कीर्तन' की शक्ति अति शीघ्र ही जड़-चेतन जीवों का परम मंगल कर देती है ।

‘गौ-महिमा’ के ज्ञान से ‘गौसेवा-रक्षा’ का भावोदय

भावाभिव्यक्ति - परम गौ-सेवक

‘श्रीब्रजशरणजीमहाराज’

श्रीमाताजी गौशाला, श्रीमानमन्दिर सेवा संस्थान ट्रस्ट

गौसेवा और गौवंश की उन्नति भारतीय संस्कृति के अभिन्न अङ्ग हैं । वेद, पुराण, धर्मशास्त्र, इतिहास आदि सभी सद्ग्रन्थों में गौमाता की महिमा गायी गई है । हिंदू, बौद्ध, जैन, सिक्ख इत्यादि समस्त धर्मावलम्बियों के लिये गौरक्षा धार्मिक दृष्टि से मुख्य कर्तव्य है । सनातन धर्म ‘हिंदू-समाज’ में गाय को सम्पूर्ण सृष्टि का पालन-पोषण करने वाली परम वात्सल्यमयी माता मानकर पूजा-सेवा की जाती है। ‘गाय माता’ को कामधेनु और सुरभि की पदवी प्राप्त है । केवल लौकिक दृष्टि से ही देखा जाय, तो भी हमारे ऐहिक जीवन के लिये गौवंश की उन्नति की परम आवश्यकता है । जन्म से लेकर अन्तिम समय तक प्रत्येक परिस्थिति में हमें गौवंश की सहायता चाहिए । गाय के दूध के बराबर बलदायी और हितकारी कोई अन्य खाद्य पदार्थ संसार में नहीं है । पाश्चात्त्य सभी वैज्ञानिकों का भी अब तो यह निश्चित मत है कि गाय के दूध के प्रयोग से मनुष्य जितना हृष्ट-पुष्ट और दीर्घजीवी हो सकता है, उतना और किसी प्रकार के भोजन से नहीं हो सकता । दूध, दही, घी, मक्खन के अतिरिक्त गेहूँ, चावल, ज्वार, बाजारा आदि - जिनके बिना धनी और निर्धन कोई भी जीवित नहीं रह सकते - बिना गौवंश के परिश्रम के उपलब्ध नहीं हो सकते । हमारा देश कृषिप्रधान है, जिसमें गौवंश की सर्वाधिक महिमाशालिनी प्रमुख भूमिका है; समस्त मंगलकारी सेवा-कार्यों में गाय माता का ही सबसे बड़ा सहयोग होता है । इस युग में भी सब तरह के वैज्ञानिक आविष्कारों के होने पर भी हमारे देश में सभी धर्मावलम्बियोंके सामाजिक और आर्थिक जीवन का प्रधान आधार गौवंश ही है। ऐसी अवस्था में सभी भारतवासियों को गौवंश के ह्रास और अवनति को रोकने और उसकी वृद्धि और उन्नति के उपायों को कार्यान्वित करने में सहयोग देना चाहिये । हमारी तो प्रत्येक धार्मिक और आर्थिक, इहलौकिक और पारलौकिक उद्देश्य की सफलता के लिये गौसेवा-आराधन परमावश्यक है ।भारतवर्ष में गौ-पालन सनातन धर्म है । आज भी सनातनधर्मी लोग गौवंश की सेवा को अपना परम धर्म समझते हैं। गायों की रक्षा के लिये विधर्मियों के साथ समय-समय पर झगड़े हो जाया करते हैं, यहाँ तक कि खून-खराबा भी हो जाता है । गौवंश को किस तरह स्वस्थ और सुखी रखा जा सकता है, यह हम लोग भूल गये हैं । आज संसारभर में सबसे अधिक गौवंश की संख्या इसी भारत देश में है । अधिकांश स्थानों में गौवंश की स्थिति अत्यन्त शोचनीय और हृदयविदारक है । इसका मूल कारण हमारी गौमाता के प्रति हीन भावना है, हमारे सनातन संस्कृति के संस्कार कमजोर हो रहे हैं क्योंकि सही शिक्षा नहीं दी जा रही है, केवल स्वार्थपरायणता व भोगवादिता सिखाई जा रही है; जिससे हमारी युवा पीढ़ी आदर्श नैतिक मूल्यों को भूलती जा रही है । इसके लिए हम सभी को अपनी भारतीय संस्कति के स्वरूप की रक्षा करने के लिए स्वयं जाग्रत होने की बहुत आवश्यकता है, अपने भारतवर्ष की गौरवशालिनी आध्यात्मिक संस्कति को समझें व समझाएँ । समस्त धर्माचार्यों व कथाव्यासों को भी गौवंश की महिमा को विशेष रूप से कहना चाहिए, जिससे लोगों की गाय माता के प्रति श्रद्धा-भावना उत्पन्न हो ।

श्रीभक्तिपथ-प्रदर्शक ही 'सद्गुरु'

श्रीबाबामहाराज के प्रातः कालीन सत्संग (२७ जून, २००४) से संकलित

भागवत में कई जगह यह बात बताई गयी है कि गुरु कौन है ? प्रायः लोग गुरु बनाने के लिए कहते हैं । कुछ दिन पहले कुछ ब्रजवासी हमारे (श्रीबाबामहाराज के) पास आये और बोले कि आप मेरे गुरु बन जाओ । हम कई साल से इस बात की प्रतीक्षा कर रहे हैं । इसके बाद दो व्यक्ति और आये, उन्होंने गुरु बनने के लिए कहा लेकिन इन लोगों से सच बात कहो तो ये लोग मानते नहीं हैं । इस तरह के लोग तो यही कहते हैं कि विधिपूर्वक हमें मन्त्र दो, तिलक दो, कंठी दो; इन्हीं सबको प्रदान करने वाले को ही लोग गुरु समझते हैं, इसके बाद चाहे कुछ भी हो । भागवत में दो-तीन जगह 'गुरु' के लक्षण लिखे हैं और दो-तीन जगह 'गुरु' की बुराई भी की गयी है । 'गुरु' की बुराई आठवें स्कन्ध में की गयी है – **अचक्षुरन्धस्य यथाग्रणीः कृतस्तथा जनस्याविदुषोऽबुधो गुरुः ।** (श्रीभागवतजी ८/२४/५०)

अन्धा व्यक्ति अन्धे लोगों का गुरु बन जाता है, उसी प्रकार अज्ञानी व्यक्ति अज्ञानी लोगों का गुरु बन जाता है । ऐसा केवल आजकल की बात ही नहीं है, बल्कि यह प्राचीनकाल से हो रहा है कि 'अन्धा' अन्धों का गुरु बन जाता है और हर आदमी गुरु ही बनता है, बड़ी जल्दी दूसरों को शिक्षा देने लगता है । छोटे से छोटा साधारण व्यक्ति भी ऐसा ही करता है; ऐसी स्थिति में जब तक सच्चा महापुरुष न मिले तो भागवत का ऐसा कथन है कि भगवान् को गुरु बना लेना चाहिए, जैसा कि राजा सत्यव्रत ने भगवान् से कहा –

त्वमर्कदृक् सर्वदृशां समीक्षणो वृतो गुरुर्नः स्वगतिं बुभुत्सताम् । (श्रीभागवतजी ८/२४/५०)

मैंने आपको गुरु मान लिया है क्योंकि गुरु को भी भगवान् से ही प्रकाश मिलता है । जैसे सूर्य से आँख को जब प्रकाश मिलता है तब आँख देखती है, नहीं तो आँख नहीं देख सकती है । आपको इसलिए गुरु माना क्योंकि आप ही सूर्य हैं और आप ही आँख हैं । आपको किसी के प्रकाश की जरूरत नहीं है किन्तु गुरु को तो भगवान् के प्रकाश की आवश्यकता है । उपरोक्त श्लोक में भगवान् के लिए कहा गया है – 'त्वमर्कदृक्' – आप ही सूर्य हैं और आप ही आँख हैं । इसलिए हमने आपको गुरु मान लिया । ऐसे बहुत से महापुरुष हुए हैं, जिन्होंने भगवान् को ही गुरु माना जैसे हित हरिवंश महाप्रभुजी ने 'श्रीराधारानी' को अपना गुरु माना । श्रीहरिदास सम्प्रदाय के प्रमुख सन्त श्रीभगवतरसिकजी को उनके गुरुदेव ने 'वृन्दावन, ब्रजभूमि' से ही बाहर निकाल दिया तो उन्होंने श्रीजी को अपना गुरु मान लिया । इसी प्रकार भक्तमाल में कथा है कि श्यामानन्दजी की सेवा से प्रसन्न होकर श्रीजी ने उनके मस्तक पर अपने चरणों के नूपुर का चिह्न लगा दिया था तो उनके गुरुदेव हृदयानन्दजी ने अपने सम्प्रदाय के तिलक के विरुद्ध मस्तक पर एक बिन्दु देखकर श्यामानन्दजी को अपने सम्प्रदाय से निकाल दिया था, उनके साथ बहुत कठोर व्यवहार किया था । उस समय श्रीजी ने सुबल सखा को भेजा और उन्हें आज्ञा दी कि हृदयानन्द से कहो कि अपने शिष्य श्यामानन्द के साथ निर्दय व्यवहार न करें । उस समय सुबल सखा ने आकाशवाणी के माध्यम से हृदयानन्द को डाँट लगाई और बताया कि श्यामानन्द के मस्तक पर बिंदी श्रीजी ने लगायी थी और तुम सम्प्रदाय के तिलक को लेकर ही द्वेष में जले जा रहे हो । इस तरह के सैकड़ों उदाहरण हैं, एक-दो नहीं हैं । राधासुधानिधि में लिखा है –

लिखन्ति भुजमूलतो न खलु शङ्खचक्रादिकं विचित्र हरिमन्दिरं न रचयन्ति भालस्थले ।
लसत्तुलसिमालिकां दधति कण्ठपीठे न वा गुरोर्भजनविक्रमात् क इह ते महाबुद्धयः ॥ (श्रीराधासुधानिधि - ८१)

राधारानी के रस में डूबे हुए रसिक सन्त अपने विशेष भजन के प्रताप से भुजाओं में शंख-चक्र आदि वैष्णव चिह्नों को नहीं लिखते हैं, मस्तक पर तिलक नहीं लगाते और तुलसी की माला भी गले में नहीं पहनते हैं ।

इस तरह के अनेकों उदाहरण हैं । इसलिए गुरु कौन है ? नारदजी ने कहा है –

स वै प्रियतमश्चात्मा यतो न भयमण्वपि । इति वेद स वै विद्वान् यो विद्वान् स गुरुर्हरिः ॥ (श्रीभागवतजी ४/२९/५१)

जो यह जान गया कि मेरे प्रियतम श्यामसुन्दर हैं, राधारानी हैं, इनके अतिरिक्त न तो पैसा प्रियतम है, न स्वादिष्ट भोजन प्रियतम और न ही स्त्री व भोग प्रियतम है । जो केवल इतना ही जान गया है कि मेरे एकमात्र प्रियतम श्रीराधाकृष्ण हैं, वहाँ कोई भय नहीं है । ऐसा जानने वाला ही सच्चा गुरु है । ऐसे गुरु के पास चले जाओ, ऐसे सन्त-भक्त के पास चले जाओ, वहाँ कोई डर नहीं है क्योंकि वहाँ हर समय यही बात मिलेगी कि प्रियतम तो केवल ठाकुरजी-श्रीजी हैं । बाकी हम जैसे लोग तो कहेंगे कि पैसा लाओ, लड्डू-पेड़ा लाओ, आज बढ़िया व्यंजन बनाओ । भागवत में स्पष्ट रूप से कह दिया गया है कि ये सब चक्कर जहाँ नहीं है, जो केवल ठाकुरजी-श्रीजी को प्रियतम मानता है, वहाँ अणुमात्र भी भय नहीं है, वहाँ निर्द्वन्द्व चले जाओ । 'यतो न भयमण्वपि' – वहाँ कोई भय नहीं है, न काल का भय है, न कर्म का भय है, न माया का भय है, न पतन (गिरने) का भय है, किसी चीज का भी जहाँ भय नहीं है, ऐसी जगह चले जाओ, जहाँ इस बात को समझ लिया गया है कि हमारे प्रियतम तो एकमात्र ठाकुरजी-श्रीजी ही हैं और कुछ नहीं है । 'इति वेद स वै विद्वान् यो विद्वान् स वै गुरुर्हरिः' - इस बात को जो जान गया, वही विद्वान् है, चाहे वह निरक्षर है, बिलकुल काला अक्षर भैंस बराबर है लेकिन जो केवल इतना ही जान गया है कि हमारे प्रियतम केवल श्रीठाकुरजी-श्रीजी हैं, वही सबसे बड़ा विद्वान् है और वही गुरु है तथा भगवान् है । जहाँ पर इस तरह का प्रपंच है कि ये करो-वह करो, पैसा लाओ, लड्डू-पेड़ा लाओ, भेंट लाओ, सेठ-साहूकार को लाओ; ऐसा व्यक्ति गुरु नहीं है । वह सब चक्कर है क्योंकि वहाँ भय है । वहाँ निश्चित ही पतन का भय है और वहाँ भगवत्प्रेम नहीं मिलेगा । श्रीमद्भागवत के इस श्लोक ४/२९/५१ में गुरु की इतनी बढ़िया परिभाषा बताई गयी है किन्तु किसी को इसके बारे में बताओ तो कोई इसे मानेगा नहीं । 'स वै प्रियतमश्चात्मा' – वही प्रियतम है, वही आत्मा है । वहाँ कोई भय नहीं है । वहाँ न माया का भय है, न काल का, न कर्म का, किसी भी प्रकार का कोई भय नहीं है । जहाँ केवल इतना ही लक्ष्य है कि केवल ठाकुरजी-श्रीजी ही हमारे प्रियतम हैं, बाकी सब जगह भय है । चाहे कोई कितना ही बड़ा गुरु हो, कितना ही बड़ा आचार्य हो, कितना ही बड़ा गोस्वामी हो, सब जगह भय है क्योंकि गुरुजी यदि बढ़िया सी गाड़ी में सवारी करते हों तो तुम भी सोचोगे कि मेरे पास भी एक गाड़ी हो जाए । गुरुजी यदि भोग-ऐश्वर्य में लिप्त होंगे तो तुम भी ऐसा करना चाहोगे, इस तरह सब जगह भय है । इसके विपरीत जो केवल इतना ही जानता है कि श्रीजी-ठाकुरजी ही हमारे प्रियतम हैं, उनके अतिरिक्त कोई हमारा प्रियतम नहीं है, वही आत्मा हैं, जिससे किसी को अणुमात्र भी भय नहीं है, जो पुरुष ऐसा जानता है, वही विद्वान् है, वही गुरु एवं साक्षात् श्रीहरि है । उसी को भगवान् मान लो । मेरे ऐसा कहने का भाव यह है कि आप सभी लोग सच्चे गुरु बन सकते हैं । हालाँकि हम यह नहीं सिखा रहे हैं कि लोगों के पास जाकर आप उन्हें चेला बनाओ । चेला-चेली बनाने की वासना तो गलत वासना है परन्तु 'गुरु' अर्थात् 'भक्तिमय शिक्षा देने वाला' हर आदमी को बनना चाहिए, क्यों बनना चाहिए क्योंकि भागवत में ऐसा कहा गया है । भागवत के पाँचवें स्कन्ध में यह भगवान् की वाणी है – **'पुत्रांश्च शिष्यांश्च नृपो गुरुर्वा'** यदि गृहस्थी है तो उसके बेटा-बेटी अवश्य ही होंगे, यदि विरक्त है तो उसके पास उपदेश ग्रहण करने के लिए लोग अवश्य आयेंगे, उसके शिष्य-शिष्या भी हो सकते हैं । यहाँ राजा से मतलब है गृहस्थ, यदि कोई गृहस्थी है तो वह अपने बेटा-बेटी को केवल इतना ही सिखाये कि इस संसार में एकमात्र भगवान् का भजन ही सार है । धन सार नहीं है, पत्नी सार नहीं है, जमीन-जायदाद सार नहीं है, कोठी-बंगला सार नहीं है । जो गुरु है, वह अपने शिष्य को यह समझाए कि संसार माया है । पैसा, बढ़िया भोजन, बढ़िया वस्त्र, आभूषण आदि माया है । 'पुत्रांश्च शिष्यांश्च नृपो गुरुर्वा' भगवान् कहते हैं कि नृप (राजा) अर्थात् जो गृहस्थ में है तथा जो गुरु अर्थात् विरक्त है, वह अपने शिष्यों को केवल इतना ही सिखाये – 'मल्लोककामो मदनुग्रहार्थः' यदि वह मेरे लोक में आना चाहता है और मेरी कृपा प्राप्त करना चाहता है । हम लोग दोगलापन सिखाते हैं । एक पिता अपने

बच्चों को यदि सिखाता है कि पैसा ही सार है तो वह पिता नहीं है; वह तो असुर ही है । गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी ने कलियुग के नीच माता-पिताओं के बारे में लिखा है – **मातु पिता बालकन्हि बोलावहिं ।**

उदर भरै सोइ धर्म सिखावहिं ॥ (श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड – ९९)

पिता अपनी सन्तान को सिखाता है कि पैसा कमाकर ला । पैसे के लिए ऐसा कर, वैसा कर । यदि केवल पैसा कमाना ही सिखाता है तो समझ लो कि वह पिता नहीं, केवल राक्षस ही है । भगवान् ऋषभ ने कहा है –

गुरुर्न स स्यात्स्वजनो न स स्यात् पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात् ।

जो गुरु अपने शिष्य से पैसा चाहता है, वह गुरु नहीं है; वह तो गोरुजी महाराज हैं, उनसे शिष्य का विनाश ही होगा । स्वजन माने चाचा-ताऊ आदि जो रिश्ते होते हैं, जैसे दादी-बाबा; ये सब स्वजन कहलाते हैं, यदि ये भगवान् की शरण में जाने का मार्ग नहीं बताते हैं तो ये स्वजन नहीं हैं, ये केवल राक्षस ही हैं ।

दैवं न तत्स्यान्न पतिश्च स स्यान्न मोचयेद्यः समुपेतमृत्युम् । (श्रीभागवतजी ५/५/२५)

वह पति नहीं राक्षस है, केवल स्त्री का शरीर भोग लेता है और बाकी उसे भगवान् की शरण में जाने का मार्ग नहीं सिखाता है तो वह पूरा राक्षस ही है । वह दैव भी दैव नहीं है । 'दैव' का अर्थ चाहे भाग्य लगा लो अथवा इष्ट देवता लगा लो । जो मृत्यु से छूटने का रास्ता नहीं बताता है, वह कुछ नहीं है । रामायण में भरतजी ने तो कहा है कि भगवान् से विमुख करने वाले ऐसे माता-पिता को तो आग लगा दो । ये झूठे ही माता-पिता बने हैं ।

जरउ सो सम्पति सदन सुखु सुहृद मातु पितु भाइ ।
सनमुख होत जो राम पद करै न सहस सहाइ ॥ (श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड – १८५)

इस चौपाई में माता, पिता, भाई-बन्धु, चाचा-ताऊ आदि सब आ गये ।

भागवत में भगवान् ऋषभ ने कहा कि यदि मेरे धाम में आना चाहते हो, मेरे पास आना चाहते हो तो यदि तुम्हारे पास बेटा-बेटी हैं, शिष्य-शिष्या हैं तो उनसे केवल इतनी ही बात करो कि प्रियतम तो राधारानी और श्रीकृष्ण ही हैं । इसके अतिरिक्त जो दूसरी बात करते हो तो माता-पिता होकर तुम सच्चे माता-पिता नहीं हो, 'गुरुजी' वास्तविक गुरु नहीं हैं, 'आचार्यजी' आचार्य नहीं हैं, 'गोस्वामीजी' गोस्वामी नहीं हैं । भगवान् की आज्ञा का पालन करके हर व्यक्ति दयामय गुरु बन सकता है । जैसे मान मन्दिर में छोटे बच्चे रहते हैं तो हर व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि इनको अच्छी शिक्षा दे, इन पर दया करे । ऐसा नहीं हो कि गुरु सोचे कि मेरा चेला होगा तो मैं केवल उसी से बात करूँगा और यदि कोई दूसरे का चेला है तो मैं उससे बात नहीं करूँगा; ऐसा नहीं होना चाहिए । कोई भी व्यक्ति आ गया है तो उस पर दया करो, उसे बोध दो । स्वयं भगवान् ने गीता में कहा है – **मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।**

कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥ (श्रीगीताजी १०/९)

मेरे भक्त का लक्षण है कि उसका चित्त सदा मुझमें ही लगा रहता है । जिसका मन मुझमें लग गया, उसका लक्षण क्या है ? उसका लक्षण यह नहीं है कि कोई आया तो उससे संसारी बात करने लगे कि कहो भाई, व्यापार कैसा चल रहा है ? स्त्री कैसी है, बच्चों का क्या हाल है ? तुम्हारी बेटी ससुराल से आ गयी कि नहीं, उसके ससुराल वालों का कैसा व्यवहार है ? भक्त इस तरह की बातें नहीं करता है । 'मच्चिता' – भगवान् कहते हैं कि उसका मन मुझमें ही लगा रहता है, 'मद्गतप्राणा' – उसकी इन्द्रियों की समस्त वृत्तियाँ मुझमें ही लगी रहती हैं । भक्त का एक ही लक्षण होता है – 'मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्' – भक्त का यह लक्षण है कि उसके पास कोई भी व्यक्ति आता है तो वह उसको बोध देता है कि देखो, जीवन में श्रीकृष्ण ही सार हैं, श्रीजी ही सार हैं । इसके अतिरिक्त जो दूसरी व्यर्थ सांसारिक बातें करता है वह तो महामूर्ख है, ऐसे हम जैसे बहुत-से लोग घूमते रहते हैं । ऐसा व्यक्ति ठग है, भक्त नहीं है । 'कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ।' भक्त के मुख से केवल ठाकुरजी-श्रीजी सम्बन्धी बातें ही निकलती हैं और इसी में वह सन्तुष्ट रहता है । ऐसा नहीं कि बढ़िया व्यंजन आ जाएँ, पैसा आ जाए, बढ़िया मोटर गाड़ी आ जाये; तब सन्तुष्ट होवे । भक्त तो केवल अपनी भक्तिरस

की वृत्ति में रमण करता है, उसी में आनन्द लेता है, उसके पास कोई आता है तो वह उसको बोध देता है । ऐसा हम इसलिए कह रहे हैं कि यह भगवान् की आज्ञा है । ऐसा नहीं है कि हमें अपने चेला-चेली बनाने हैं । हमारा तो यह कहना है कि संसार में कहीं भी जाओ, कहीं भी रहो, जहाँ भी बैठो, किसी से भी बात करो, उसको बोध दो । सच्चा बोध देना चाहिए । गुरु का मतलब यह नहीं है कि हमने चेला बना लिया, उसे मन्त्र दे दिया तो वह तो हमारा चेला है और बाकी सब पराये हैं, इसलिए वे चूल्हे में जाएँ; ऐसा नहीं होना चाहिए । सच्चे गुरु बनो । यह भगवान् की आज्ञा है । यदि तुम वास्तव में भगवान् के धाम में जाना चाहते हो तो तुम्हारे द्वारा समाज को वास्तविक भक्ति की रोशनी मिलनी चाहिए । बच्चों को अच्छी बातें सिखाओगे तो ये वीर बन जायेंगे । सुबह कोई भी बालक न सोये, इसका ध्यान रखो । बड़े लोग शासन नहीं मानते हैं तो छोटे बच्चे तो शासन मान ही लेंगे । बच्चों को सिखाओगे तो ये अभी से मान लेंगे । बड़े होने पर नहीं मानेंगे । भागवत में कहा गया है – **सह देहेन मानेन वर्धमानेन मन्युना ।**

करोति विग्रहं कामी कामिष्वन्ताय चात्मनः ॥ (श्रीभागवतजी ३/३१/२९)

कपिल भगवान् कहते हैं कि जैसे-जैसे शरीर बढ़ता है तो इसके साथ ही अहंकार भी बढ़ता जाता है । जैसे साँप के शरीर में जहर बढ़ता रहता है, हर तीन महीने में मदारी साँप की विष की थैली को तोड़ता रहता है । यदि वह नहीं तोड़ेगा तो सर्प के काटने से उसकी मृत्यु हो जायेगी । विष की थैली तोड़ने के तीन महीने बाद फिर उसमें जहर उत्पन्न हो जाता है । इसी प्रकार मनुष्य के शरीर की ऐसी प्रकृति है कि जैसे-जैसे यह बढ़ता है, वैसे-वैसे ही इसमें अहंकार का जहर भी बढ़ता जाता है । छोटे बच्चे से कुछ कहो तो वह मान लेगा किंतु बड़ा होने पर वह नहीं मानेगा क्योंकि शरीर के बढ़ने के साथ ही अहंकार भी बढ़ता जाता है । ज्यों-ज्यों मनुष्य की आयु बढ़ती है त्यों-त्यों उसके अहं की भी वृद्धि होती जाती है । आयु की वृद्धि के साथ ही अहंकार का जहर भी बढ़ जाता है और फिर उससे क्रोध उत्पन्न होता है । इसके बाद वह अपने नाश के लिए दूसरों से द्वेष करता है । इसीलिए बच्चे बड़े हो जायेंगे तो इनका अहं बढ़ जाने के बाद फिर ये तुम्हारी बात नहीं मान सकेंगे । सहन तो वही करता है, जिसके अन्दर विवेक उत्पन्न हो जाता है, जिसके अन्दर दैन्य उत्पन्न हो जाता है ।

अन्तिम बात यह है कि शिष्य कौन है ? 'शासितुं योग्यः शिष्यः' । जो शासन को सह लेता है, वही शिष्य है । यह शिष्य की परिभाषा है । शिष्य वह नहीं है जो साधुओं के स्थानों में पंगत के लिए निमन्त्रण का प्रमाण पत्र ले आये और घोषणा कर दे कि हम अमुक महात्मा के शिष्य हो गये, शिष्य होने की वैधता का प्रमाण पत्र ले लिया । ऐसा नहीं है । 'शास्' धातु से शिष्य शब्द बना है । जो हर समय गुरु का शासन मानता है, वह शिष्य है । इस सन्दर्भ में एक बड़ा अच्छा उदाहरण है । गुरु नानकदेव के एक शिष्य थे । एक बार गुरुनानक ने अपने उन शिष्य से कहा कि एक चबूतरा बना दो । उनका शिष्य चबूतरा बनाने के लिए बहुत सा सामान लाया और चबूतरा बना दिया । गुरुनानक ने उस चबूतरे को देखा तो कहा कि यह चबूतरा ठीक नहीं है, इसे तोड़ दो और दूसरा चबूतरा बनाओ । गुरुनानकजी यह लीला कर रहे थे, ऐसा नहीं कि उनका लक्ष्य अपने शिष्य को परेशान करना था । गुरुदेव की आज्ञा से शिष्य ने दूसरा चबूतरा बनाया । नानकदेव बोले कि यह ठीक नहीं बना है । यह तुमने कैसा चबूतरा बना दिया । इस तरह से बनाओ । दूसरी जगह बनाओ । शिष्य ने फिर से चबूतरा बनाया । गुरु नानक ने देखा तो बोले कि यह भी बेकार है । दूसरी जगह बनाओ । इस चबूतरे को तोड़ दो । उस चबूतरे को तोड़कर उनके शिष्य ने तीसरी जगह चबूतरा बनाया । गुरुदेव ने विचित्र लीला की और बोले कि यह भी ठीक नहीं है । अब इस दिशा में बनाओ । देखने वाले लोग गुरुनानक की आलोचना करने लगे कि ये कैसे गुरु हैं ? बार-बार अपने शिष्य से चबूतरा बनवाते हैं और जब वह बड़ी मेहनत से चबूतरा बनाता है तो उसे बेकार बताकर तुड़वा देते हैं और नया चबूतरा बनाने की आज्ञा देते हैं । लोगों ने उस शिष्य से कहा कि तुमने चार-पाँच जगह चबूतरा बनाया, उसको बनाने में तुमको महीनों लग गये किन्तु तुम्हारे गुरु जी तो बार-बार उसे बेकार बताकर तुड़वा देते हैं और फिर से नया चबूतरा बनाने की आज्ञा देते हैं । ऐसे तुम कब तक चबूतरा बनाते रहोगे ? तुम गुरुजी से

पूछो कि एक बार आप निश्चय करके बता दीजिये कि कहाँ चबूतरा बनाना है ? प्रतिदिन आप कहते हैं कि यहाँ बनाओ, फिर उसको तुड़वा देते हैं और कहते हैं कि दूसरी जगह बनाओ । लोगों की बात सुनकर गुरुनानक के शिष्य ने कहा कि यह आप लोग क्या कहते हैं ? यदि गुरुजी जीवन भर मुझसे कहें कि चबूतरा यहाँ बनाओ और फिर उसको तुड़वा दें तथा फिर नया चबूतरा बनवायें और कहें कि इसको तोड़ो और नया चबूतरा बनाओ तो मैं जीवन भर उनके आदेश से चबूतरा बनाता और तोड़ता रहूँगा । मेरा उनसे पूछने का कोई अधिकार नहीं है कि आप ऐसा क्यों कहते हैं ? तुम लोग मुझे क्या सिखाते हो ? उस शिष्य ने इस तरह अपने गुरुदेव की आलोचना करने वाले लोगों को फटकार दिया । इस तरह की गुरु भक्ति का यह परिणाम हुआ कि गुरुनानक ने अपने बाद अपने पुत्र को अपनी गद्दी नहीं सौंपी । अपने इस सर्वात्मसमर्पित शिष्य को ही उन्होंने अपना उत्तराधिकारी बनाया था । इसी प्रकार गुरु गोविन्द सिंह के हजारों शिष्य थे किन्तु उन्होंने केवल पाँच शिष्य ही चुने थे । उन्हें 'पञ्च प्यारे' कहा जाता है । गुरु गोविन्द सिंह ने कहा कि अन्य जितने भी मेरे शिष्य हैं, ये सब केवल नाममात्र के शिष्य हैं । केवल ये पाँच ही मेरे वास्तविक शिष्य हैं । गुरु गोविन्द सिंह के दस हजार शिष्यों की बहुत बड़ी फ़ौज थी । गुरु गोविन्द सिंह ने हेम कुण्ड पर जाकर देवी की सिद्धि की थी । बिना सगुण-साकार उपासना के सिद्धि कभी नहीं हो सकती है । केवल निराकार उपासना से कभी सिद्धि नहीं हो सकती है । गुरु गोविन्द के हजारों शिष्य थे तो एक दिन उन्होंने एक बड़ी सभा का आयोजन किया और बोले कि कल मेरा प्रत्येक शिष्य जो मुझे गुरु मानता है, वह सभा में सम्मिलित होगा । उनके आदेश से दस हजार शिष्यों की बहुत बड़ी भीड़ आई । उन्होंने एक बहुत बड़ा मंच बनवा रखा था । उस मंच पर एक पर्दा टांग दिया गया था । जिससे कि बाहर का दृश्य भीतर न दिखाई पड़े । इसके बाद 'गुरु गोविन्द सिंह' मंच पर चढ़े और बोले कि आज सारे देश से माता बलिदान चाहती है । सभी जानते थे कि वे देवी के उपासक थे । उन्होंने सभा में कहा कि मेरा विश्वास है कि जो देश के लिए, धर्म के लिए बलिदान चढ़ायेगा तो हम जीत जायेंगे । ये तलवार है, इसके द्वारा सबके सामने मैं सिर काटूँगा । कौन अपना बलिदान दे सकता है ? एक शिष्य सभा से उठकर खड़ा हुआ । उसने कहा कि 'गुरुदेव ! मेरा सिर काट दीजिये ।' गुरुदेव ने कहा – 'ठीक है।' शिष्य को मंच पर बुलाया गया । वे शिष्य को लेकर परदे के भीतर गये । परदे के भीतर बकरों को रखा गया था । उन्होंने एक बकरे के सिर पर तलवार चलाई । शिष्य को तो अलग बैठा दिया गया था क्योंकि जो हीरा आदमी है, उसको मारने से क्या लाभ होगा ? दस हजार लोगों की भीड़ में से जो एक आदमी अपने बलिदान के लिए तैयार हुआ, वह तो हीरा ही है । जब बकरे के ऊपर तलवार से प्रहार किया गया तो उससे खून की धारा बह निकली और मंच के बाहर गयी । उसको देखकर उस सभा में सभी का मन काँप गया । उन्होंने सोचा कि गुरुदेव तो सच में ही गला काट रहे हैं । गुरु गोविन्द सिंह फिर से मंच पर आये और बोले – 'तुममें से और कौन अपने बलिदान के लिए तैयार है ?' इस तरह उन्होंने घण्टों तक किया । इतनी बड़ी सभा में से केवल पाँच नवयुवक ही अपने बलिदान के लिए तैयार हुए । उन्होंने उन पाँचों को अलग भीतर बैठा दिया और उनके बदले पाँच बकरे काट दिए । इसके बाद उन्होंने उन पाँच शिष्यों को सभा में सबके सामने लाकर कहा कि ये हैं 'पञ्च प्यारे' । इनको मैं अमृत पिलाता हूँ । गुरु गोविन्द सिंह सिद्ध पुरुष थे । उन्होंने देवी की सिद्धि की थी । उन्होंने कहा कि केवल ये ही मेरे पाँच शिष्य हैं, बाकी सब तो ऐसे ही हैं ।

इसलिए शिष्य उसको कहा जाता है, जो हर समय शासन को सहता है । पुत्र भी वही है जो अपने पिता से यह न कहे कि पिताजी ! आप ये क्या करते रहते हैं ? वाल्मीकि रामायण के अनुसार रामजी ने लक्ष्मणजी को डाँटा था क्योंकि उन्होंने अपने पिता दशरथजी के बारे में रामजी से कहा था कि इन्होंने अपनी पत्नी के वश में होकर आपको राज्य देने के स्थान पर चौदह वर्ष का वनवास दिया है । रामजी ने बहुत कठोरतापूर्वक लक्ष्मणजी को डाँटकर कहा था कि यदि तुम पिताजी के बारे में ऐसा कहोगे तो मेरे साथ नहीं रह सकते हो । चले जाओ मेरे पास से । रामजी ने कहा कि हमें यह अधिकार नहीं है कि पिताजी से कहें कि आपने हमारे साथ ऐसा क्यों किया ? इस बात को गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामचरितमानस में माता के ऊपर ढालते हुआ कहा है । इस प्रकार देखा जाए तो आज संसार में सच्चे शिष्य तो विरले ही होते हैं ।

आजकल प्रायः गुरु-शिष्य के नाते का केवल एक दम्भ का नाटक-सा चल रहा है क्योंकि बड़े होने पर जीव का अहंकार बढ़ जाता है, इसलिए आगे चलकर वह गुरु की भी बात को नहीं मानता है । वास्तव में यदि सच्चा श्रद्धावान् भावुक शिष्य हो तो उस पर श्रीगुरुदेव की एक-एक बात का बहुत विशेष प्रभाव पड़ता है और वह गुरु के वचनों की प्रत्येक निष्ठा का अति दृढ़तापूर्वक पालन करता है ।

श्रीगुरुपूर्णिमा-महोत्सव (आषाढ़, शुक्ल, पूर्णिमा, वि. सं. २०८२, '१० जुलाई २०२५, गुरुवार')

रसिया तर्ज – याद आई रे, श्याम तेरी आई रे, हाँ याद आई रे ॥

ब्रज आई रे, श्रीगुरुवर आई रे, हाँ ब्रज आई रे ।
जन्मों से बिरथा भटक रही । गुरुदेव कृपा कर बाँह गही ॥
भव-डूबत हमें बचाई रे, हाँ ब्रज आई रे ।
सत्संग-वचनन सुन कै आई । हिये-हिलोर धाम की आई ॥
आनन्द अद्भुत आई रे, हाँ ब्रज आई रे ।
महिमा-संतन्ह की अधिकाई । पुरान-वेद-सद्ग्रंथन्ह गाई ॥
प्रभु ने स्वयं बताई रे, हाँ ब्रज आई रे ।
कृपा हरि की है पहचान । संत समागम दुर्लभ जान ॥
भक्ति बरबस आई रे, हाँ ब्रज आई रे ।
होवै जब सच्ची संत-शरण । राधामाधव तब करैं वरण ॥
भाव भगति ही पाई रे, हाँ ब्रज आई रे ।
है मंगलकारी सत्संग भैया । बिगड़ी बन जाए जीवन नैया ॥
जंजाल छोड़ कै आई रे, हाँ ब्रज आई रे ।
सत्संग सार है ब्रज-आराधन । है आनन्ददाई राधा-गायन ॥
गुरुवरश्री समझाई रे, हाँ ब्रज आई रे ।
व्यास-पूर्णिमा याद करावै । गुरु-महिमा ही ध्यान में आवै ॥
उत्सव अनुपम आई रे, हाँ ब्रज आई रे ।

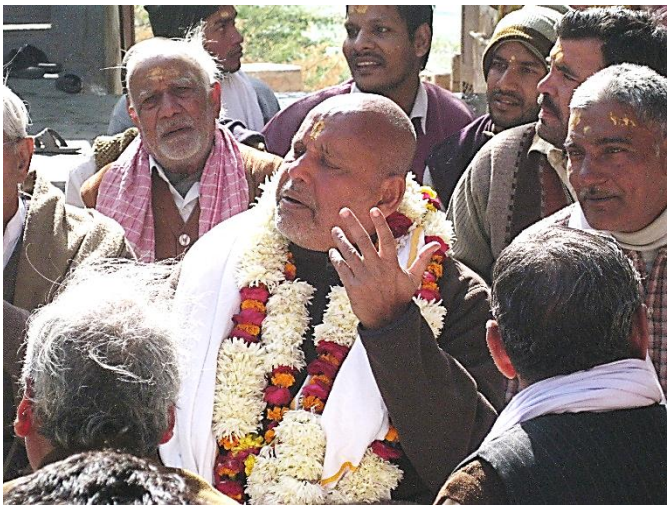

सत्संग का प्रभाव

बाबाश्री के सम्बन्ध में चिकसौली गाँव के ब्रजवासी - श्रीधर्मसिंह शर्मा (श्रीज्ञानीजी) के भावोद्गार

प्रश्न – ज्ञानीजी ! आप नन्दगाँव के स्कूल में प्रधानाचार्य रह चुके हैं । आप श्रीबाबामहाराज के पुराने सत्संगियों में से हैं । आप चिकसौली ग्राम के निवासी, ब्राह्मणकुल में जन्मे तथा बाबामहाराज के अत्यधिक निकट रहने वाले बड़े ही भक्त ब्रजवासी हैं । हम लोग आपसे यह जानना चाहते हैं कि आपका श्रीबाबामहाराज से सम्बन्ध कब और कैसे हुआ एवं आपको बाबामहाराज के साथ रहने से क्या-क्या अनुभूतियाँ व उपलब्धियाँ प्राप्त हुईं ?

उत्तर – श्रीबाबामहाराज जब हमारे गाँव चिकसौली में भिक्षा करने के लिए जाया करते थे, उस समय मैं कक्षा दो में पढ़ता था । श्रीबाबा भिक्षा माँगने मेरे घर भी जाते थे । मेरी माताजी का स्वभाव बड़ा ही मृदु था । बाबामहाराज भी उनके सौम्य स्वभाव से प्रभावित थे । श्रीबाबा मुझसे पूछते थे कि तुम कौन-सी कक्षा में पढ़ते हो तो मैं बताता था कि कक्षा दो में पढ़ता हूँ । श्रीबाबा ने पूछा कि क्या तुमको कोई कविता याद है, तब मैंने उनको एक कविता सुनायी थी –

'सूरज निकला चिड़ियाँ बोली, कलियों ने भी आँखें खोलीं ।'

अच्छे स्वरों में मैंने श्रीबाबा को कविता सुनायी थी । उसे सुनकर उन्होंने कहा कि तुम्हारा स्वर तो बहुत अच्छा है । मैंने कहा कि महाराजजी ! यह आपकी, सन्तों की कृपा है । इस प्रकार मेरी श्रीबाबा से प्रथम भेंट उसी समय हुई थी । हमारे गाँव में एक किशन प्यारी नामक दादी थीं, वे हमारी पड़ोसिन ही थीं । महाराजजी उनका बड़ा सम्मान करते थे, उनसे बहुत स्नेह करते थे, उनका स्वभाव भी बड़ा सुन्दर था । गाँव में ही एक नारायणी दादी भी थीं, उनका स्वभाव भी बहुत बढ़िया था, उनको भी बाबा बहुत स्नेह करते थे ।

प्रश्न – अपने घर से निकलकर आप मानमन्दिर में रहे तो अखण्ड रूप से आपने मानमन्दिर में रहने का संकल्प कैसे किया ?

उत्तर – एक दिन श्रीबाबामहाराज हमारे घर पर भिक्षा लेने के लिए गये तो उन्होंने मेरी माताजी से कहा कि मानमन्दिर में बहुत-से विद्यार्थी मुझसे पढ़ने के लिए आते हैं तो आप भी अपने इस पुत्र को पढ़ने के लिए वहाँ भेजा करो । यह भी वहाँ जाकर कुछ पढ़ेगा । श्रीबाबा के ऐसा कहने पर ही फिर मेरा मानमन्दिर में आना प्रारम्भ हुआ । अध्ययन करने के लिए श्रीबाबा ने मानमन्दिर बुलाया तो मैं यहाँ आने लगा और धीरे-धीरे यहाँ रहने भी लगा । काफी समय तक यहाँ आने पर श्रीबाबा के सत्संग का भी मुझ पर प्रभाव पड़ा । बाबाश्री के सत्संग का ही परिणाम हुआ कि फिर मैं प्रतिदिन रात को मानमन्दिर में ही रुकता था । मैंने बी.ए. तक शिक्षा प्राप्त की, तब तक मैं लगातार यहाँ ही रहा । श्रीबाबामहाराज मुझे पढ़ाया करते थे । पण्डित श्रीरामजीलालशर्माजी ने मुझे गणित का अध्ययन कराया । उस समय मैं कक्षा दस में पढ़ता था । सन् १९६८ में मैंने हाईस्कूल पास किया । पण्डितजीमहाराज के अध्यापन, उनकी प्रेरणा और उनके परिश्रम के कारण मैं प्रथम श्रेणी में पास हुआ था ।

प्रश्न – जब आप मानगढ़ में अध्ययन के लिए आते थे, उस समय यहाँ की स्थिति कैसी थी ?

उत्तर – जिस समय मैं मानमन्दिर पढ़ने के लिए आता था तो यह मन्दिर पूरी तरह खण्डहर था । यहाँ की स्थिति अच्छी नहीं थी । यहाँ कोई सुविधा नहीं थी । हम लोग नीचे गह्वरवन से पानी लेकर मानमन्दिर आते थे क्योंकि उस समय यहाँ पर्वत पर पानी का कोई प्रबन्ध नहीं था । हम लोग दोनों हाथों में पानी से भरी बाल्टियाँ लेकर आते थे । नीचे से लाये गये पानी के द्वारा ही यहाँ का सारा काम चलता था ।

प्रश्न – ऐसा सुना है कि मानमन्दिर में श्रीबाबा के द्वारा वृक्ष भी लगाये गए थे तो उनका सिंचन किस प्रकार होता था ? वर्षाकाल के अतिरिक्त समय में छोटे पौधों के लिए किस माध्यम से यहाँ पानी उपलब्ध होता था ? आप कृपा करके बताएँ ?

उत्तर – वर्षा के द्वारा ही पेड़ों की सिंचाई का कार्य होता था परन्तु उसके बावजूद भी हम लोग जो नीचे से पानी लेकर आते थे, उसके द्वारा पेड़ों का सिंचन करते थे ।

प्रश्न – आगे चलकर मानमन्दिर में जो परिवर्तन हुआ, यहाँ कुछ निर्माण कार्य भी हुए और मानमन्दिर के द्वारा ब्रज में बहुत-से कार्य हुए, इनके विषय में आपको क्या जानकारी है ?

उत्तर – पहले तो मानमन्दिर में चित्रपट के रूप में ही राधामानबिहारीलाल की सेवा-पूजा होती थी । लगभग सन् १९८८ में यहाँ श्रीविग्रह के रूप में श्रीराधामानबिहारीलाल का आगमन हुआ । हम लोग नीचे से मानमन्दिर में ईंट, सीमेन्ट, बजरी आदि सिर पर ढोकर लाते थे । यहाँ वाहनों के आने का कोई रास्ता नहीं था कि उनके माध्यम से आवश्यक सामान मानमन्दिर में लाया जा सके, इसलिए सभी सामान सिर पर ढोकर ही लाना पड़ता था । पानी भी ढोकर हम लोग लाते थे । सर्वप्रथम यहाँ श्रीबाबामहाराज के लिए एक छोटा-सा कमरा बनाया गया, उसके निर्माण के लिए भी जो सामग्री आई, उसे भी नीचे से सिर पर ढोकर लाना पड़ा ।

प्रश्न – ऐसा सुनते हैं कि मानमन्दिर के माध्यम से ब्रज में बहुत से कल्याणकारी कार्य किये गये हैं, उनके बारे में आप बताएँ ।

उत्तर – सन् १९८८ में सबसे पहले बाबामहाराज ने ब्रजयात्रा शुरू की थी । प्रारम्भ की यात्रायें जून के महीने में, ग्रीष्मकाल में सम्पन्न हुईं । उस समय ब्रजयात्रा का छोटा ही स्वरूप था । सबसे पहली यात्रा में २००-२५० लोग चले थे । ट्रैक्टर में ब्रजयात्रियों के लिए भोजन बनाने की सामग्री ले जाई जाती थी । यात्रा के पड़ाव-स्थलों पर सभी ब्रजयात्री भोजन बनाने में सहयोग करते थे । सुबह यात्रा करने के बाद विश्राम होता था । उस समय बाबामहाराज सभी यात्रियों को बालभोग के लिए गुड़-चना या सत्तू उपलब्ध कराया करते थे । उसके बाद सभी लोग भोजन बनाने में लग जाते थे । भोजन बनाते-बनाते दो बज जाते थे, तब सभी लोग प्रसाद पाते थे । इसके बाद कुछ देर के लिए सभी ब्रजयात्री विश्राम करते थे और उसके पश्चात् संध्या को श्रीबाबा का सत्संग होता था ।

प्रश्न – आप पचासों वर्षों से श्रीबाबा के सानिध्य में रहे हैं । उनके साथ रहने से आपको आध्यात्मिक एवं लौकिक क्या-क्या उपलब्धियाँ हुईं, इसके बारे में आप थोड़ा-सा बताइये ।

उत्तर – श्रीबाबामहाराज की कृपा से मुझको मानमन्दिर में रहने का सौभाग्य मिला । उनके साथ रहने से मैंने आध्यात्मिक उपलब्धियाँ प्राप्त कीं । उनकी कृपा से ही मुझे शिक्षा के क्षेत्र में भी सेवा करने का अवसर मिला । मैंने वृन्दावन में 'वनमहाराज' के विद्यालय से बी.ए. की शिक्षा प्राप्त की । उसके बाद मुझे नन्दगाँव के इन्टर कॉलेज में भी सेवा करने का अवसर प्राप्त हुआ । ३० जून, २०१३ को मैं वहाँ से सेवा-निवृत्त हुआ । अध्यात्म के क्षेत्र में श्रीबाबा की मुझे भरपूर कृपा प्राप्त हुई ।

प्रश्न – पचासों वर्ष पूर्व जब आप श्रीबाबामहाराज के सम्पर्क में आये और मानमन्दिर में रहने लगे तो श्रीबाबा की रहनी और उनके सत्संग के बारे में भी आप कुछ बताइए ?

उत्तर – पहले मानमन्दिर में रात को संकीर्तन हुआ करता था । श्रीमानबिहारीलाल के मन्दिर के सामने एक रासमण्डल था । उस रासमण्डल पर ही महाराजजी संकीर्तन में दो-तीन घंटे तक नृत्य करते थे । मानपुर गाँव के कुछ ब्रजवासी भी रात के उस संकीर्तन में सम्मिलित होते थे । महाराजजी नृत्य करते समय कीर्तन भी बोलते थे और हम लोग उनके कीर्तन का अनुकरण करते थे । मेरे साथ कुछ चिकसौली गाँव के भी सहयोगी थे । हम सभी रासमण्डल के चारों ओर घूमकर कीर्तन करते थे । जब कीर्तन समाप्त हो जाता था तो महाराजजी पद-गायन करते थे ।

उस समय महाराजजी का जो कमरा था, उसके ऊपर उन्होंने एक फूस की झोपड़ी बनवायी थी । रात को वे उसी झोपड़ी में रहते थे । उसमें धान के पयार को डालकर उसके ऊपर कुछ बिछाकर उसी पर महाराजजी बैठते थे और भजन किया करते थे । उनका जीवन पूर्ण त्याग-वैराग्य से भरा हुआ था । अन्य लोगों को भी उनके इस आदर्श जीवन से प्रेरणा मिली । उस समय मानमन्दिर में बिजली-पानी अथवा अन्य किसी प्रकार की कोई सुविधा नहीं थी । महाराजजी का उस

समय का जीवन हम लोगों को सदा याद रहेगा । श्रीबाबा जब अपने गुरुदेव श्रीप्रियाशरणजीमहाराजजी से मिलने जाते थे तो हम लोग भी उनके साथ जाते थे । हड़िया वन में भी बड़े महाराजजी रहे थे । उस समय श्रीबाबा के साथ मुझे भी उनके दर्शन का सौभाग्य मिला था । पहले बड़े बाबा 'गाजीपुर, प्रेमसरोवर' में भी रहे थे, वहाँ उन्होंने भजन किया था । शाम को वे परिक्रमा करने जाते थे । जब बाबामहाराज गह्वरवन में कुटी में रहते थे तो उस समय बड़े बाबा गह्वरवन में भी आते थे । उस समय भी मुझे उनके दर्शन का सौभाग्य मिलता था । उनका भी बड़ा ही त्यागपूर्ण जीवन था । इसके अतिरिक्त उनका सतत् राधा नाम का जप चलता रहता था ।

बाबामहाराज की माताजी गह्वरवन में कुटी में रहती थीं । वे मुझे बाबा के विषय में बताती रहती थीं । उन्होंने बाबा के जन्म के विषय में भी बताया था । बाबा के पिताजी अंग्रेजों के शासनकाल में एक बहुत उच्च कोटि के पुलिस अधिकारी थे । उनकी पहली सन्तान के रूप में एक कन्या (दीदीजी) का जन्म हुआ । इसके पश्चात् पुत्र-प्राप्ति की कामना से बाबा के माता-पिता ने रामेश्वरम् में धरना दिया । धरना देते हुए हुए जब ३८ दिन गुजर गये तो उनको इस प्रकार का आभास हुआ कि पुत्र-प्राप्ति के लिए तुम्हारे द्वारा हठ करना व्यर्थ है । माताजी ने कहा कि हमें एक पुत्र तो अवश्य ही चाहिए तो उनको ऐसा आभास हुआ कि किसी अदृश्य शक्ति ने कहा कि तुमको पुत्र की प्राप्ति तो हो जाएगी किन्तु उससे तुमको कोई लौकिक लाभ नहीं होगा । इसके बाद माताजी-पिताजी प्रयाग लौट आये तो समय आने पर बाबा का जन्म हुआ । बाबा थोड़ा बड़े हुए तो माताजी ने उन्हें स्कूल में पढ़ाया । माताजी द्वारा बचपन में बाबा को पढ़ाने का तरीका विचित्र था । जब कभी बाबा पढ़ने के लिए रुचि न दिखाते तो घर में एक चूहा प्रतिदिन आता था, वह बिल में छिप जाता तो उसकी पूँछ बाहर लटकती रहती । 'माताजी' बाबा को दिखाते हुए कहतीं कि जल्दी पढ़ो, देखो ये हनुमानजी आ गये हैं । तुम नहीं पढ़ोगे तो ये तुमको मारेंगे । चूहे को हनुमानजी समझकर बाबा डर जाते और उसकी पूँछ देखकर पढ़ने लगते थे । बाबामहाराज ने बारह वर्ष की अवस्था तक केवल गाय का दूध ही पिया था । अन्न तो बहुत ही कम खाते थे । माताजी का लक्ष्य था कि बाबा को अच्छे पौष्टिक आहार खाने को दिए जाएँ । आगे चलकर जब बाबा 'प्रयागराज विश्वविद्यालय' में पढ़ने लगे तो उनको 'श्रीकृपालुजीमहाराज' का सत्संग भी प्राप्त हुआ । बाबामहाराज दिन में विश्वविद्यालय में पढ़ते और शाम को कृपालुमहाराजजी के सत्संग में सम्मिलित होते थे । वे रेलगाड़ी द्वारा कृपालुजी के स्थान में सत्संग के लिए जाया करते थे । जैसा कि बाबामहाराज ने बताया कि एकबार कृपालुजी का सत्संग कानपुर में हो रहा था तो उनके सत्संग के बाद जब 'श्रीबाबा' प्रयाग के लिए लौट रहे थे तो सत्संग में एक पद गाया गया था – **'साँवरा जादूगर सिरमौर ।'** उस पदगान के रस में श्रीबाबा ऐसा डूब गये कि उन्हें सही ट्रेन में बैठने का भी ध्यान नहीं रहा । वे प्रयाग जाने वाली ट्रेन में न बैठकर दूसरी तरफ जाने वाली रेलगाड़ी में बैठ गये । वह गाड़ी कहीं और जाकर रुकी, तब बाबा को होश आया कि अरे, ये मैं कहाँ आ गया ?

मुझे श्रीबाबा के सानिध्य में अधिक रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और अब भी मैं उन्हीं के सानिध्य में रह रहा हूँ । श्रीबाबा के सत्संग का मेरे ऊपर ऐसा प्रभाव पड़ा कि मैंने विवाह न करने का निश्चय कर लिया और मैं अविवाहित ही हूँ । मेरे माता-पिता और परिवार के अन्य सदस्य मुझे प्रतिदिन श्रीबाबा के कीर्तन में आने से भी रोकते थे । बचपन में ऐसी घटना हुई कि जब मैंने पिताजी के मना करने पर भी प्रतिदिन मानमन्दिर में बाबामहाराज के कीर्तन में जाना बन्द नहीं किया तो एक दिन पिताजी ने मेरे पैर पकड़कर कुएँ में उल्टा लटका दिया था । इतना सब होने पर भी मैंने बाबामहाराज के कीर्तन में, उनके सत्संग में आना बन्द नहीं किया ।

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे । अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽऽत्मा सम्प्रसीदति ॥ *(श्रीमद्भागवतजी १/२/६) धर्म क्या है ? ये है केवल भगवान् की भक्ति । कैसी भक्ति ? अहैतुकी भक्ति । उसमें कोई कामना न हो - न धर्म की, न अर्थ की, न काम की, न मोक्ष की । भरतजी ने कहा था-* ***अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान । जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन ॥*** *(श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड - २०४) भागवत, गीता और रामायण आदि भक्तिशास्त्र शुरू से ही जीव को पुष्ट कर देते हैं । भरतजी ने प्रयागराज में भिक्षा माँगी कि मुझे अर्थ नहीं चाहिए, धर्म नहीं चाहिए, भोग आदि कामनायें नहीं चाहिए, मोक्ष भी नहीं चाहिए, ये है 'अहैतुकी भक्ति' ।*

सबसे बड़ी शक्ति 'श्रीभावभक्ति'

बाबाश्री के सम्बन्ध में चिकसौली गाँव के ब्रजवासी श्रीधर्मसिंह शर्मा (श्रीज्ञानीजी) के भावोद्गार

प्रश्न – श्रीबाबामहाराज की रहनी आपने बचपन से देखी है, वह कैसी थी ?

उत्तर – महाराजजी की रहनी अत्यधिक वैराग्यपूर्ण थी । उन्होंने गाजीपुर में संस्कृत पाठशाला से संस्कृत का भी अध्ययन किया । उनका अध्ययनकाल बड़ा ही कठोर था । महाराजजी मन्दिर की दीवारों पर कोयले से श्लोक लिखकर याद किया करते थे । रात भर वे मिट्टी के दीपक की रोशनी में संस्कृत के ग्रन्थों का अध्ययन किया करते थे । उन्होंने संस्कृत व्याकरण का अध्ययन करते समय कठोर परिश्रम किया था । उस समय सखीशरणमहाराजजी उनके लिए गाँव से भिक्षा माँगकर लाया करते थे । उनको भी बाबामहाराज का यही आदेश था कि आधी रात के बाद ही भिक्षा लेकर मानमन्दिर में आना । उस समय सखीशरणमहाराजजी नीचे गह्वरवन में कुटी में रहते थे । आधी रात के बाद वे श्रीबाबा के लिए भिक्षा की रोटी और एक बाल्टी में पानी भरकर मानमन्दिर आते थे । अध्ययन करते समय बाबा इतना परिश्रम करते थे कि उनके नेत्रों में दर्द होने लगता था । एक आँख दुःखने लगती तो बाबा उसे हाथ से बंद करके दूसरी आँख से पढ़ते थे, जब वह आँख ठीक हो जाती, दूसरी आँख दुःखने लगती तो बाबा उसे बंद करके दूसरी आँख से पढ़ते थे । इस प्रकार उन्होंने इतना कठोर परिश्रम किया कि शास्त्री की परीक्षा में 'वाराणसी विश्वविद्यालय' से टॉप किया था, जबकि उनके अध्ययन करने के लिए कोई विशेष साधन उपलब्ध नहीं थे, कोई सुविधा नहीं थी । मेरे जीवन के ऊपर उनकी इस तरह की रहनी का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा ।

बाबामहाराज ने गह्वरवन में अपने रहने के लिए एक कुटिया बनवायी थी । राधासरोवर के तट पर उनकी कुटिया थी । वहाँ एक तमाल का वृक्ष था । बाबामहाराज उस वृक्ष के नीचे बैठकर भजन करते थे । उस समय वे मौन रहा करते थे, किसी से बोलते नहीं थे । बाबा के पास एक मिट्टी का पात्र (करुआ) था ।

उस समय गह्वरवन में मौनीबाबा भी रहा करते थे; बाबाश्री की माताजी की उनके प्रति अत्यधिक श्रद्धा थी । कभी-कभी माताजी उनके लिए प्रसाद बनाकर ले जाया करती थीं तो मैं भी उनके साथ जाया करता था । मैं नीचे माताजी के पास रहता था । एक दिन माताजी खीर प्रसाद बनाकर ले गयी थीं । उस समय मौनी बाबा अपनी कुटिया के भीतर थे । माताजी ने बाहर से कहा – 'बाबा ! प्रसाद ले लो ।' मौनी बाबा ने अपनी कुटिया में छोटा-सा दरवाजा बना रखा था, उसमें से उन्होंने एक कटोरा बाहर निकालकर रख दिया । माताजी ने खीर प्रसाद उस कटोरा में डाल दिया । उस समय वहाँ कुछ कुत्ते भी थे । एक कुत्ता आकर कटोरे की खीर को चाटने लगा । माताजी ने कहा – 'महाराजजी ! कुत्ते इस प्रसाद को जूठा कर रहे हैं । आप दूसरे पात्र में खीर ले लीजिये ।' मौनी बाबा ने कहा कि इसी कटोरे में डाल दो । माताजी ने खीर प्रसाद फिर से उसी कटोरे में डाल दिया और हम लोग चले आये ।

श्रीबाबामहाराज ने एक बार बताया था कि गह्वरवन में एक रासमण्डल है, जहाँ पर भादों सुदी, नवमी को रासलीला होती है । बाबामहाराज एकबार रासमण्डल पर बैठकर भजन कर रहे थे, उस समय मौनी बाबा अपनी कुटिया में कुछ चिन्तन कर रहे थे । सीताजी के स्वयंवर का प्रकरण था, उसी का मौनी बाबा चिन्तन कर रहे थे । सीताजी हाथों में वनमाला लेकर रामजी के गले में डालने के लिए आ रही थीं । मौनी बाबा को उस लीला अनुभव हो रहा था और वे कह रहे थे – 'अहा हा ! कितनी सुन्दर छटा है ।' इस तरह से जब मौनी बाबा कह रहे थे, उसी समय उनको यह आभास हो गया कि कोई बाहर बैठकर मेरी बात को सुन रहा है । वे कहने लगे – 'सुन रहा है, सुन रहा है, कोई छिपकर सुन रहा है ।' ऐसा कहकर मौनी बाबा चुप हो गये । बाबा महाराज भी वहाँ से अलग हो गये और अपनी कुटी में चले आये । माताजी कभी-कभी प्रसाद बनाकर मौनी बाबा के पास ले जाती थीं तो वे माताजी से ले लेते थे । कोई बाहरी व्यक्ति उनको कुछ देने के लिए आता तो उससे वे नहीं लेते थे । उनको यदि कोई प्रणाम करता तो अपने सिर पर वे जूता मारते थे । किसी की दी हुई कोई वस्तु वे कभी नहीं लेते थे । **प्रश्न** – मानमन्दिर पर कीर्तन के लिए आने वाले आपके साथ के लगभग

अधिकतर ब्रजवासियों ने मानमन्दिर में आना बन्द कर दिया किन्तु आप तो अभी तक यहाँ कीर्तन के लिए आते रहते हैं तो आपको ऐसी क्या विशेषता दिखाई दी, जो आप अब तक यहाँ आ रहे हैं ?

उत्तर – मेरे सामने चिकसौली गाँव के आठ-दस लड़के पहले मानमन्दिर में कीर्तन करने के लिए आते थे । मैं तो प्रारम्भ में मानमन्दिर अध्ययन करने की दृष्टि से आता था लेकिन बाद में बाबामहाराज के सत्संग के प्रभाव से मेरा रुझान बदलता चला गया । अन्य लोगों का यहाँ आना कैसे बन्द हो गया, ये मुझे नहीं पता । मेरी भावनायें महाराजजी के प्रति दृढ़ थीं, इसलिए मैं यहाँ बराबर आता रहता हूँ । जैसा कि बाबा की माताजी ने बताया था कि उन्होंने और बाबा के पिताजी ने रामेश्वरम में धरना दिया था, उसी के फलस्वरूप उन्हें बाबा की प्राप्ति हुई, इसलिए मैं तो बाबामहाराज को एक अवतार के रूप में मानता हूँ । एक बार हम लोग रात को मान मन्दिर में बाबा के साथ कीर्तन कर रहे थे तो चिनगारी के रूप में एक उजाला-सा हुआ था, यह एक चमत्कारिक घटना थी । इससे हम लोगों ने यह प्रेरणा ली कि भक्ति में शक्ति है । भक्ति करने वाला व्यक्ति इस रास्ते पर सदा अग्रसर होता रहता है । जो चमत्कार होते हैं, इनसे भी प्रेरणा मिलती है और आगे बढ़ने का साहस भी बढ़ता है ।

जब बाबा महाराज ब्रज की होली जैसे जाव और बठैन के होरंगा देखने जाते थे तो हम लोग भी उनके साथ पैदल ही इन गाँवों में जाते थे और वहाँ से बरसाना पैदल ही वापस लौटते थे । हम लोगों को बड़ा ही आनन्द आता था । श्रीबाबा वहाँ की लीलाओं का वर्णन करते थे, हम लोग उसे सुनते थे । जाव और बठैन के होरंगा बहुत प्रसिद्ध हैं ।

प्रश्न – श्रीबाबामहाराज ने गह्वरवन को बचाने के लिए ४६ वर्षों तक संघर्ष किया था, आपने वह संघर्ष भी देखा होगा, उसके बारे में थोड़ा बताइए । उत्तर – गह्वरवन को सुरक्षित करने के लिए बाबामहाराज ने बहुत अधिक संघर्ष किया । उनके अथक प्रयास से ही गह्वरवन सुरक्षित हुआ है । यहाँ पहले ऊँट चरने के लिए आते थे । वे पेड़ों को नष्ट करते थे । भेंड-बकरियाँ भी यहाँ चरने के लिए आती थीं । लोग यहाँ शौच करने के लिए आते थे । इससे गन्दगी फैलती थी । लकड़ी तोड़ने के लिए भी लोग यहाँ आते थे । उस समय श्रीबाबामहाराज की प्रेरणा से हम लोग उनको लकड़ी तोड़ने के लिए मना करते थे तो वे लोग हमसे लड़ने के लिए तैयार हो जाते थे । ऊँट चराने वालों से हम लोगों का झगड़ा भी हुआ था । इस तरह गह्वरवन की सुरक्षा करने के लिए बड़ा ही संघर्ष करना पड़ा, तब महाराजजी की कृपा से यह वन पूर्ण रूप से सुरक्षित हुआ है । प्रश्न – बाबामहाराज पहले जब मान मन्दिर में कीर्तन कराते थे तो बालकों में किस प्रकार भक्ति, वीरता और जोश की भावनायें भरते थे ? इसके लिए बाबा क्या करते थे, जो लड़कों में बहुत उत्साह आ गया था ?

उत्तर – महाराजजी का जो सत्संग था, वही अपने आप में अत्यन्त अद्भुत था । वे बालकों को वीरता की कथायें सुनाते थे । वे जो आध्यात्मिक सत्संग देते थे, उसमें वीरता की गाथायें भी सुनाया करते थे । उसके माध्यम से बालकों में जोश भर जाया करता था । आत्मरक्षा, ब्रज की रक्षा के लिए बाबा ने बालकों को मल्लविद्या भी सिखाई थी । कोई हमलावर यदि अचानक हमला कर दे तो उससे अपनी रक्षा के लिए क्या उपाय किया जाए, इसे बाबा सिखाया करते थे । इन विद्याओं में भी बाबा बड़े ही निपुण थे । महाराजजी तो सर्वगुण सम्पन्न हैं । इसीलिए हम उनको एक अवतार के रूप में मानते हैं । प्रश्न – इसके अतिरिक्त आपने बाबा में अन्य क्या कलायें देखीं ?

उत्तर – महाराज जी संगीत कला में तो पूर्ण कुशल हैं ही । जब वे प्रयाग में रहते थे तो वहाँ बड़े-बड़े संगीत के सम्मलेन हुआ करते थे, श्रीबाबा उनमें जाया करते थे और गाते थे । मान मन्दिर में बाबा सत्संग के साथ ही बालकों को संगीत का भी ज्ञान प्रदान करते थे । सबसे पहले वे बालकों को ढोलक बजाना सिखाते थे । उनके सिखाने पर हम लोगों ने ढोलक बजाना सीख लिया । हारमोनियम बजाना भी उन्होंने सिखाया । महाराजजी संगीतविद्या में पूर्ण पारंगत हैं, इसलिए उनके द्वारा सिखाये संगीत का लाभ भी हम ब्रजवासियों को खूब मिला ।

'आराधना' से वास्तविक ब्रज-सेवा

बाबाश्री के सम्बन्ध में चिकसौली गाँव के ब्रजवासी - श्रीधर्मसिंह शर्मा (श्रीज्ञानीजी) के भावोद्गार

प्रश्न – बाबामहाराज से ब्रजवासियों को आपने क्या लाभ होते देखा है ?

उत्तर – बाबामहाराज ने ब्रजवासियों को कीर्तन करने की विशेष प्रेरणा दी क्योंकि जिस समय वे यहाँ आये थे तो आसपास के गाँवों में कहीं भी कीर्तन की ध्वनि सुनायी नहीं पड़ती थी । बाबा ने मानपुर गाँव के ब्रजवासियों से कहा कि यह स्थान ब्रज जैसा तो लगता नहीं है । मैंने तो प्रयाग में सुना था कि ब्रज में हर समय राधाकृष्ण के गुणगान की, उनके कीर्तन की ध्वनि सुनायी देती रहती है किन्तु यहाँ तो मुझे ऐसा कुछ दिखाई नहीं पड़ता है । आप लोग मिलकर अब कीर्तन करना शुरू कीजिये । उस समय मानपुर में भागचन्द्र नामक एक मिस्त्री थे, उन्होंने ही गह्वरवन में बाबा के लिए एक कुटिया बनायी थी । जब वे बाबा के सम्पर्क में आये तो उनसे भी बाबा ने कीर्तन करने के लिए कहा । आगे चलकर बाबामहाराज और भागचन्द्र मिस्त्री मानपुर में गाँव के बाहर एक कुएँ के पास बैठकर कीर्तन किया करते थे । उस समय उनके पास कीर्तन करने के कोई साधन – ढोलक, हारमोनियम आदि भी नहीं थे । वे केवल झाँझ के साथ कीर्तन करते थे । मानपुर के अन्य ब्रजवासियों को भी बाबा ने कीर्तन करने की प्रेरणा दी । भइयाजी, उनके पिताजी तथा अन्य ब्रजवासी भी बाबा के सम्पर्क में आये । तब कीर्तन एक समूह के रूप में होने लगा और धीरे-धीरे वह कीर्तन बढ़ने लगा । इसी दौरान भइयाजी के पिता श्रीप्रकाशजी का बाबा के प्रति विशेष लगाव हो गया, तब फिर प्रकाशजी के घर में बाबा का कीर्तन होने लगा । उस समय उनके द्वारा कीर्तन के साधन ढोलक आदि भी उपलब्ध कराये गये और इस तरह कीर्तन अच्छी तरह बढ़ने लगा तथा एक बड़े समूह में लोग कीर्तन करने लगे । इसके पश्चात् मानमन्दिर में भी बाबा ने कीर्तन करना प्रारम्भ किया । उसमें मानपुर के ब्रजवासी अधिक उपस्थित रहते थे और जितने भी बाबा के पास अध्ययन करने के लिए छात्र आते थे, वे भी उपस्थित रहते थे । इस तरह बाबा ने ब्रज में आकर कीर्तन का प्रचार बहुत मजबूती के साथ किया और उसका यह परिणाम है कि केवल ब्रज में ही नहीं बल्कि दूर स्थित उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश और बिहार आदि प्रान्तों में भी संकीर्तन का प्रचार हो गया है । गाँव-गाँव में प्रभातफेरियाँ चलने लगी हैं । इस सन्दर्भ में बाबा द्वारा किये गये अथक प्रयास से ब्रजवासियों को भी लाभ मिला है और ब्रज के बाहर स्थित प्रान्तों के भक्तों को भी लाभ हुआ है ।

प्रश्न – आपने बाबा की युवावस्था को भी देखा है । उस समय श्रीबाबा शारीरिक परिश्रम भी बहुत करते थे जैसे गह्वरवन के राधा सरोवर के शोधन का कार्य भी ब्रजवासियों को साथ लेकर किया करते थे तो उसके बारे में आप बताएँ ।

उत्तर - बाबा महाराज ब्रजसेवा के लिए बहुत ही तत्पर रहते थे । गह्वरवन में स्थित राधा सरोवर की सफाई करने के लिए बाबा ने ही यहाँ के ब्रजवासियों को प्रेरणा दी, नहीं तो श्रीबाबा के पहले कोई भी इस कुण्ड को साफ़ नहीं करता था । यहाँ तक कि सफाई न होने के कारण कुण्ड का पानी भी सड़ जाता था । उस समय जो ब्रजवासी बाबामहाराज के पास नित्य ही मानमन्दिर में सत्संग के लिए, कीर्तन के लिए आते थे, उनको लेकर बाबा महाराज ने राधा सरोवर की सफाई का अभियान चलाया । उनके इस प्रयास से इस कुण्ड की सफाई होने लगी । यह कुण्ड बहुत गहरा है । उसमें नीचे से पानी के स्रोत भी हैं । पुराने समय में कुण्ड की सफाई करने के बाद उन स्रोतों के द्वारा ही फिर से पानी भर जाता था । उस समय वर्षाकाल के दौरान ही राधासरोवर का पानी निकालकर इसकी सफाई की जाती थी । कुण्ड की सफाई होने के बाद जब खूब वर्षा होती थी तो कुण्ड पानी से भर जाता था और बहुत स्वच्छ रहता था । प्रतिवर्ष ही राधासरोवर की सफाई का कार्य किया जाता था । इस कार्य में श्रीबाबामहाराज स्वयं उपस्थित रहते थे । वे स्वयं बहुत परिश्रम करते थे तथा सेवा करने वाले अन्य ब्रजवासियों में भी वे इस पुनीत कार्य के लिए जोश भर दिया करते थे । उन्हीं के प्रयास से इस सरोवर की सफाई का कार्य आज तक चल रहा है । बाबामहाराज ने ब्रज के अन्य स्थानों में भी वनों के संरक्षण और कुण्डों के जीर्णोद्धार का कार्यक्रम प्रारम्भ किया था । हमारे चिकसौली गाँव के दोहनी कुण्ड के जीर्णोद्धार का भी कार्य श्रीबाबा के द्वारा करवाया गया । उसी समय उनके द्वारा ब्रज की रक्षा हेतु 'ब्रज रक्षक दल' की स्थापना की गयी थी ।

श्रीबाबा के प्रयास से दोहनी कुण्ड सुरक्षित हुआ । कोसी में गोमती गंगा का भी बाबा के द्वारा जीर्णोद्धार करवाया गया । अब तक ब्रज के अनेक कुण्डों का श्रीबाबा के द्वारा जीर्णोद्धार करवाया गया है । जब श्रीबाबा ब्रज में आये थे, उस समय यहाँ की लीला स्थलियाँ धीरे-धीरे नष्ट होती जा रही थीं । श्रीबाबा के मन में ऐसी प्रेरणा हुई कि राधामाधव की लीला स्थलियाँ समाप्त हो रही हैं तो इनको सुरक्षित करने का कार्य करना चाहिए । उन्होंने ब्रज के लीला स्थलों के संरक्षण का दृढ़ संकल्प किया और इसके लिए कठोर परिश्रम किया, जिसके परिणामस्वरूप आज ब्रज के पर्वत सुरक्षित हैं तथा अन्य बहुत-सी लीला स्थलियाँ सुरक्षित हैं ।

प्रश्न – ब्रजवासियों का बाबा महाराज के प्रति क्या भाव रहता है ?

उत्तर – जो ब्रजवासी केवल अपने स्वार्थों में ही निहित हैं, वे तो श्रीबाबा के धाम सेवा के और अन्य कल्याणकारी कार्यों का विरोध करते हैं । उन्होंने गह्वरवन की सुरक्षा और ब्रज के पर्वतों की सुरक्षा के श्रीबाबा के अभियान का बहुत विरोध किया किन्तु अन्ततोगत्वा विजय तो सत्य की ही होती है । महाराजजी का धामसेवा का कार्य सत्यसंकल्प पर आधारित था, अतः वह पूरा हुआ ।

प्रश्न – ब्रज में धामसेवा के तथा अन्य जितने भी कल्याणकारी कार्य हुए, क्या श्रीबाबा ने किसी से इसके लिए धन माँगा ?

उत्तर – महाराजजी के द्वारा ब्रज के पर्वतों की रक्षा हुई, वनों की रक्षा हुई, कुण्डों की रक्षा हुई । इसके लिए उन्होंने किसी से भी धन की माँग कभी नहीं की । एकमात्र श्रीराधारानी के आश्रय के बल पर ही बड़ी-बड़ी ब्रजसेवाएँ की हैं । राधिकारानी की आराधना ही सबसे बड़ी शक्ति है, उसी आराधन की कृपा से सभी सेवायें सहज होती हैं, केवल उनका संकीर्तन करो; बाबाश्री हमेशा सबसे यही कहते कि हमें किसी से कुछ भी नहीं चाहिए, हमारा धन राधा नाम है, आप लोग भी कीर्तन किया करो । श्रीबाबा कहते कि श्रीजी की कृपा से गह्वरवन में जो नित्य संकीर्तन होता है, इसके कारण से कोई कमी नहीं आयेगी; सब समस्याओं का समाधान श्रीजी ही करती हैं, साधारण-सा जीव बेचारा क्या करेगा ? केवल उनका नाम लो, उनका गुणगान करो, श्रीजी परम करुणामयी हैं, वे अवश्य कृपा करेंगी; श्रीबाबा ने जीवन में एकमात्र राधरानी का ही अनन्य आश्रय लिया है, कभी किसी धनी मानी सेठ या किसी प्रतिष्ठित लोगों का सहारा नहीं लिया; इस कारण से सहज ही सभी प्रकार से सहयोग करने वाले लोग अपने आप आकर के चुपचाप अपना परम सौभाग्य मानकर, श्रीजी की विशेष कृपा का अनुभव करके सेवा कर जाते थे । इसे कहते हैं अनन्य आश्रय की महिमा का चमत्कार, श्रीइष्ट की अनन्यता में अनन्त शक्ति है ।

प्रश्न – कभी कोई संकट आया तो क्या श्रीबाबा ने बचाव के लिए किसी से सहायता की माँग की जैसे पुलिस प्रशासन, ब्रजवासियों से अथवा नेताओं से सहायता की याचना की ?

उत्तर – नहीं, ऐसा तो कभी नहीं हुआ । श्रीबाबा महाराज कभी भी किसी से धन की याचना तो करते ही नहीं थे । इसके अलावा वे किसी से सहायता के लिए भी कभी नहीं कहते थे । न तो बाबा ने कभी किसी कार्य के लिए किसी नेता से सहयोग माँगा और न ही कभी पुलिस प्रशासन से संकट को दूर करने के लिए सहायता करने के लिए कहा । महाराजजी तो केवल लोगों को सत्संग दिया करते थे और उनके सत्संग के द्वारा ही लोगों में सत्कार्य के लिए प्रेरणा जागृत होती थी और उस प्रेरणा के द्वारा लोग स्वतः ही श्रीबाबा महाराज से जुड़ते थे तथा उनके द्वारा चलाये गये जन कल्याण और धाम सेवा के कार्यों में सहयोग करते थे । महाराजजी तो प्रतिवर्ष जो राधारानी ब्रजयात्रा चलाते हैं, उसके लिए भी किसी से कोई पैसा नहीं लेते हैं । प्रश्न – बहुत से धनी लोग श्रीबाबा के पास मान मन्दिर के पुनर्निर्माण के लिए भी आते होंगे । क्या आपने ऐसा देखा है ? उत्तर – हाँ, श्रीबाबामहाराज से बहुत से बाहर के लोगों ने मानमन्दिर के पुनर्निर्माण के लिए कहा । भारत के बहुत-से धनाढ्य लोग इस कार्य के लिए श्रीबाबा के पास आये किन्तु श्रीबाबा ने कभी भी उन धनी लोगों से मन्दिर के पुनर्निर्माण के लिए सहयोग करने के लिए नहीं कहा । कोई स्वतः अपनी इच्छा से मन्दिर की कोई सेवा करना चाहे तो कर सकता है किन्तु बाबा ने कभी भी किसी से मानमन्दिर के लिए आर्थिक सहयोग करने के लिए नहीं कहा । पहले एक हापुड़ की एक मण्डली थी । वह राधाष्टमी और रंगीली होली के विशेष कार्यक्रम में बाबामहाराज के

सत्संग में आती थी । श्रीबाबामहाराज ने उस समय ब्रज के रसियाओं (लोक गीतों) की रचना की थी । उनके मन में इच्छा थी कि मैंने ब्रजलीलाओं से सम्बन्धित जिन गीतों की रचना की है, इनका प्रकाशन हो जाए और ये सुरक्षित हो जाएँ किन्तु हापुड़ के जो लोग श्रीबाबा के पास आते थे अथवा बाहर से बहुत-से लोग श्रीबाबा के सत्संग का लाभ उठाने के लिए आते थे, उनसे भी कभी बाबा महाराज ने उन रसियाओं का प्रकाशन कराने के लिए नहीं कहा । राधारानी की कृपा से हापुड़ के भक्तों के मन में स्वतः ही प्रेरणा जगी और मानमन्दिर से रसिया रसेश्वरी का जो सबसे पहला संस्करण छपा था, उसको उन लोगों ने ही छपवाया था । प्रश्न – बरसाने में जो राधारानी का मन्दिर है, आपके समय से यह इसी रूप में था अथवा बाबा महाराज की प्रेरणा से इसका विस्तार कराया गया है । उत्तर – राधारानी के मन्दिर का जो आँगन है, वह पहले कुछ छोटा था और जब राधाष्टमी तथा रंगीली होली के पर्व पर बहुत बड़ी भीड़ आती थी तो लोगों को श्रीजी के दर्शन में परेशानी होती थी । इसके लिए बाबा महाराज ने बाहर से आने वाले कुछ लोगों को प्रेरणा दी । राधारानी के मन्दिर में नीचे जो छतरी है, वहाँ साल में तीन बार राधारानी जाती हैं, राधाष्टमी, हरियाली तीज और धूरेंड़ी के उत्सवों में शाम को वहाँ विराजमान होती हैं । वहाँ बड़ी संख्या में लोग उनका दर्शन करते हैं । समाज गान का आयोजन होता है । उस छतरी के सामने का जो मैदान है, वह पहले खुला हुआ था । समाज गान के समय वर्षा काल में पानी गिरने से राधाष्टमी और हरियाली तीज के दिन व्यवधान होता था । बाबा महाराज के मन में यह प्रेरणा हुई कि यहाँ पर ऐसा कुछ निर्माण कार्य हो, जिससे यह व्यवधान भी दूर हो जाए तथा राधारानी के मन्दिर का जो प्रांगण (आँगन) है, उसे भी आगे की ओर कुछ बढ़ा दिया जाए । आगे चलकर श्रीबाबा महाराज की प्रेरणा से ही श्रीजी मन्दिर में विशाल हॉल बना । जब हॉल बनाया गया तो मन्दिर का जो आँगन था, उसका भी आगे की ओर विस्तार किया गया और इस तरह राधारानी के मन्दिर का आँगन आगे की ओर काफी बढ़ाया गया है । यह विस्तार कार्य श्रीबाबा महाराज की ही प्रेरणा से हुआ है । इसी प्रकार नन्दगाँव के मन्दिर का भी विस्तार कार्य श्रीबाबा महाराज की प्रेरणा से हुआ है । प्रश्न – आपने अपने जीवन में कई महात्माओं का दर्शन किया होगा ? उनके सम्पर्क में आप आयें होंगे । श्रीबाबामहाराज में तथा अन्य सन्तों में आपको क्या अन्तर दिखाई दिया ? श्रीबाबा में आपको क्या विशेषताएँ दिखाई पड़ीं ? उत्तर – मुझे अन्य सन्तों के सत्संग का सौभाग्य तो नहीं मिला किन्तु बाबा महाराज के साथ मैं जाता था तो मुझे अन्य सन्तों के दर्शन का भी लाभ मिला । श्रीबाबा महाराज की मुख्य विशेषता यह है कि वे किसी से किसी प्रकार की याचना नहीं करते हैं । बाबा के अन्दर शुरू से जो पूर्ण त्याग-वैराग्य था, वह अभी तक बना हुआ है । प्रश्न – पहले मानमन्दिर में बिजली-पानी की कोई सुविधा नहीं थी । आप लोग मटकों में भरकर पानी नीचे गह्वरवन से ऊपर मान मन्दिर के पर्वत पर लाते थे तो क्या आप लोगों को लगता था कि यहाँ पानी की सुविधा हो जाए, बिजली का प्रबन्ध हो जाए । इस सम्बन्ध में बाबा का क्या विचार था ? क्या वे मानमन्दिर में बिजली-पानी की सुविधा के विरुद्ध थे ? उत्तर – मानमन्दिर में पहले जो छात्र रहते थे, हम लोग पानी नीचे से ही लाया करते थे । मान मन्दिर में जल का विशेष अभाव था । बाहर के जो सत्संगी मान मन्दिर में आते थे, उनको भी यह असुविधा खटकती थी । हम लोगों को भी पानी के लिए विशेष परिश्रम करना पड़ता था । श्रीबाबामहाराज मानमन्दिर में बिजली का प्रयोग करने के लिए मना ही करते रहते थे । उनका लक्ष्य था कि मानमन्दिर के सभी सदस्य पूर्ण वैराग्य के साथ रहें, सुख-सुविधाओं से दूर रहें । एक बार जब राधारानी ब्रज यात्रा चालीस दिन की परिक्रमा के लिए ब्रज में भ्रमण कर रही थी, उसी समय मान मन्दिर के प्रबन्धक श्रीराधाकांत शास्त्री (भइयाजी) ने श्रीबाबा की इच्छा न होने पर भी मान मन्दिर में बिजली का प्रबन्ध करवा दिया क्योंकि बाहर से आने वाले लोगों को बिजली-पानी के अभाव में बहुत कष्ट होता था ।

जो मनुष्य समस्त कामनाओं का त्याग करके स्पृहारहित होकर आचरण करता है, निर्मम – जो ममता रहित है, निरहंकार-अहंकार रहित है, वह शान्ति प्राप्त करता है, केवल शान्ति ही नहीं वह भगवान् को प्राप्त करता है

,

संकीर्तन का संप्रभाव

बाबाश्री के सम्बन्ध में चिकसौली गाँव के ब्रजवासी - श्रीधर्मसिंह शर्मा (श्रीज्ञानीजी) के भावोद्गार

प्रश्न – क्या आपके जीवन में कभी कोई ऐसा संकट आया, जो श्रीबाबा महाराज की कृपा से दूर हो गया हो ? इसके बारे में बताइए ।

उत्तर – श्रीबाबामहाराज की कृपा तो मेरे ऊपर सदैव ही रही । एक बार मैं मथुरा से गोवर्धन आ रहा था । गोवर्धन आते-आते सूर्यास्त हो गया और वहाँ से बरसाना आने के लिए कोई वाहन नहीं मिला । एक जीप दिखाई दी, उसमें लोगों की बड़ी भीड़ थी । उस जीप के अलावा वहाँ और कोई वाहन नहीं था, इसलिए मैं भी जीप में चढ़ गया । मैं अन्य सवारियों के साथ जीप की छत पर बैठ गया । जीप का ड्राईवर बड़ी तेज गति के साथ जीप को चला रहा था । उसको लोगों ने मना भी किया कि इतनी तेज गति से जीप को मत चलाओ किन्तु वह नहीं माना । अन्त में डाहरौली और कमई गाँवों के बीच में एक बस स्टॉप था, उसके बीच में जीप का टायर पंचर हो गया, चूँकि गाड़ी तेज गति से चल रही थी और उसी बीच में उसका पिछला टायर पंचर हो गया । ड्राईवर जीप को नियन्त्रण में नहीं रख सका और जीप ने दो-तीन पलटा लिया और आगे जाकर सीधी हाथ में खाइयों में जा पड़ी । मेरे शरीर में भी चोट लगी । मेरे बाँए हाथ की हड्डी का जो जुड़ने वाला स्थान (joint) था, वह अलग हो गया । उसका बरसाने के अस्पताल में इलाज कराया गया । मैंने अस्पताल से भइयाजी को फोन किया । वे अस्पताल पहुँचे । मुझे याद है कि उस समय श्रीबाबामहाराज ने कहा था कि भगवान् ने गीता में कहा है – 'न मे भक्तः प्रणश्यति' – मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता है । मैं तो कोई भक्त नहीं हूँ, एक साधारण जीव हूँ किन्तु मानमन्दिर में श्रीबाबामहाराज के द्वारा कराये जाने वाले संकीर्तन में प्रतिदिन सम्मिलित होता था, इसलिए श्रीबाबामहाराज की कृपा से, गीता में भगवान् द्वारा कहे गये वचन के द्वारा बाबा के द्वारा मुझे आश्वस्त करने के कारण उनकी ही कृपा से मैं शीघ्र ही स्वस्थ हो गया । मैं इसको एक चमत्कार ही मानता हूँ अन्यथा जीप जिस प्रकार पलट गयी थी, उसमें मेरे जीवित बचने की कोई सम्भावना नहीं थी । उस दुर्घटना में दो लोगों की तो मृत्यु भी हो गयी थी तथा अन्य लोग भी गम्भीर रूप से घायल हो गये थे । मेरे लिए तो यह एक चमत्कारिक घटना ही थी ।

प्रश्न – श्रीबाबा महाराज के बारे में आप समाज को क्या सन्देश देना चाहेंगे ?

उत्तर – श्रीबाबा महाराज की समाज के लिए जो मुख्य रूप से प्रेरणा है, वह यही है कि मनुष्य जीवन का परम लाभ यही है कि अधिक से अधिक भगवान् की उपासना करें, उपासना में विशेष रूप से भगवन्नाम का कीर्तन अधिक से अधिक करें, कीर्तन का ही समाज में प्रचार करें क्योंकि सभी शास्त्रों में कलिकाल में जीवों के उद्धार के लिए संकीर्तन से अधिक शक्तिशाली और कोई साधन नहीं है । इसके अतिरिक्त अपनी सामर्थ्य के अनुसार ब्रजभूमि की भी सेवा अवश्य ही करें । ब्रज के वन, पर्वत और कुण्डों की रक्षा में सहयोग करें । भगवान् के संकीर्तन से बड़ी-बड़ी बाधायें दूर हो जाती हैं । अच्छे कार्य के लिए जो सत्संकल्प करता है, नाम-कीर्तन से वह अवश्य ही पूर्ण होता है । बाबामहाराज सदा सबसे यही कहते हैं और ब्रजयात्रा में भी वे इसी पर विशेष बल देते हैं । बाबा से मिलने के लिए जो भी ब्रजवासी अथवा बाहर के लोग आते हैं तो बाबा सभी से कीर्तन करने के लिए ही विशेष रूप से कहते हैं । कीर्तन से बड़ी-बड़ी विपत्तियाँ बड़ी आसानी से नष्ट हो जाती हैं और भगवान् अवश्य ही सफलता प्रदान करते हैं ।

बाबामहाराज जब मानपुर में प्रकाशजी के घर कीर्तन कराने के लिए जाते थे तो उस समय गाँव में कुछ विरोधी लोग भी थे । उन्हें बाबा द्वारा गाँव में कीर्तन कराया जाना पसन्द नहीं था और वे उसका विरोध किया करते थे । उन्होंने बाबामहाराज को जान से मारने की धमकी भी दी थी किन्तु श्रीबाबामहाराज मरने से नहीं डरते थे । उनका तो यही उद्देश्य था कि भगवन्नाम-कीर्तन के लिए ब्रज में यदि मेरा शरीर भी समाप्त हो जाए तो इससे उत्तम क्या होगा ? एक बार हम लोगों ने बाबा से कहा कि आप मानपुर में कीर्तन कराने के लिए मत जाइए, वहाँ विरोधी लोग आप पर प्रहार करने के लिए तैयार बैठे हैं । श्रीबाबा ने कहा – 'नहीं, मैं तो अवश्य ही जाऊँगा, चाहे वे लोग मुझे जान से मार दें अथवा कुछ

भी करें ।' इस तरह महाराज जी रुके नहीं और मानपुर में कीर्तन कराने के लिए चले गये । बाबा के चले जाने के बाद मानमन्दिर में भी जितने भी बालक थे, वे भी मानपुर चले गये । श्रीबाबा ने कहा – 'अरे, तुम लोग यहाँ मरने के लिए क्यों आ गये ? तुम लोग ब्रजवासी बालक हो, तुम लोगों के साथ कुछ गलत हो गया तो मेरे ऊपर कलंक लगेगा कि बाबा ने ब्रजवासी बालकों को मरवा दिया । इसलिए तुम लोग यहाँ से भाग जाओ ।' हम लोग बाबा के मना करने पर भी वहाँ से नहीं हटे । बाबामहाराज जब मानपुर से कीर्तन समाप्त करके मानमन्दिर के लिए आ रहे थे तो उन्होंने देखा कि सच में रास्ते के दोनों ओर लोग उनको मारने के लिए खड़े थे । बाबामहाराज सिंह की तरह निर्भय होकर राधारानी का चिन्तन करते हुए गाँव से मानमन्दिर लौट आये और विरोधी लोग उनको किसी तरह की कोई हानि नहीं पहुँचा सके । उस दिन मैं बाबा के साथ नहीं था । इस घटना के बाद बाबा को बहुत मना किया गया कि वे मानपुर में कीर्तन कराने के लिए न जाएँ । बाबा ने कहा कि ठीक है किन्तु मानपुर में कीर्तन या सत्संग नहीं टूटना चाहिए । बाबा के आदेश से मानमन्दिर से लोग प्रकाशजी के घर कीर्तन करने के लिए जाते थे । एक दिन हम लोग प्रकाशजी के घर से कीर्तन समाप्त करके आ रहे थे । उस समय मैं कक्षा १० में पढ़ता था । मेरे साथ अन्य दो-तीन विद्यार्थी भी आ रहे थे, वे भी कक्षा १० में पढ़ते थे । हम लोग नारा लगा रहे थे – 'धर्म की जय हो, अधर्म का नाश हो, प्राणियों में सद्भावना हो, विश्व का कल्याण हो ।' विरोधी लोगों ने देखा तो हम लोगों के ऊपर उन्होंने पत्थर फेंकना शुरू कर दिया । उस समय मैं हाई स्कूल की परीक्षा दे रहा था । सुबह मेरा हिन्दी का प्रथम पेपर था । उसी के एक दिन पहले रात को मानपुर में विरोधियों ने जो पत्थर मारा, वह मेरी बायीं आँख के पास आकर लगा । उससे सिर फट गया । मेरी चिकित्सा करायी गयी और हम लोग पुलिस स्टेशन भी गये तथा हमलावरों के विरुद्ध थाने में रिपोर्ट भी लिखाई । सुबह मुझे विद्यालय में परीक्षा भी देनी थी । बाबामहाराज की कृपा से मैं स्वस्थ हो गया और हिन्दी के प्रथम पेपर में मुझे बहुत अच्छे अंक प्राप्त हुए, जबकि सिर में चोट लगने के कारण तो मेरे लिए परीक्षा देने की भी सम्भावना नहीं थी किन्तु बाबामहाराज की कृपा से मैं विद्यालय गया और परीक्षा दी । हिन्दी की परीक्षा में मुझे ३३ में से २७ अंक प्राप्त हुए । यह एक चमत्कार ही था ।

प्रश्न – श्रीबाबामहाराज उन दिनों रात्रि के कीर्तन में बहुत तीव्र गति से आवेश के साथ नृत्य करते थे । उसके बारे में आप थोड़ा-सा बताइए ।

उत्तर – उन दिनों जब मानमन्दिर में रात्रि को कीर्तन आरम्भ होता था तो पहले आठ मात्रा की धीमी ताल के साथ शुरू होता था, इसके बाद फिर तेज ताल में होता था और अन्तिम समय तो बाबा बहुत ही तेज गति के साथ नृत्य करते थे । तीव्र गति के साथ नृत्य करते-करते उनका सारा शरीर पसीने से भीग जाता था । बाबा एक घंटे तक लगातार नृत्य किया करते थे । कभी-कभी तो वे सवा घंटे तक भी नृत्य करते थे । रासमण्डल पर वे अलात चक्र की भाँति गोल-गोल घूमते हुए बहुत ही तीव्र गति से नृत्य करते थे । उनके चारों ओर ब्रजवासी भी नृत्य किया करते थे । जिस प्रकार चैतन्यचरितामृत में महाप्रभु चैतन्य के बारे में लिखा है कि वे अलात चक्र की भाँति बहुत तीव्र गति से गोलाकर नृत्य करते थे, ठीक उसी प्रकार श्रीबाबामहाराज भी नृत्य करते थे । उस समय बाबामहाराज का शरीर पूर्ण स्वस्थ था और वे अत्यधिक बलिष्ठ थे, उस समय उनकी युवावस्था भी थी तथा यौवन का जोश भी था । शारीरिक रूप से वे अत्यधिक शक्तिसम्पन्न थे । उनकी संकीर्तन-आराधना के कारण ही उनके द्वारा ब्रज में धाम सेवा के बड़े-बड़े कार्य सम्पन्न हुए ।

प्रश्न – बरसाने की प्रभातफेरी का कार्य श्रीबाबा के द्वारा कैसे प्रारम्भ किया गया था, ये आप बताने की कृपा करें ?

उत्तर – महाराजजी ने जब प्रभातफेरी का कार्यक्रम शुरू किया था तो पहले उनकी प्रेरणा से ब्रज के बाहर के लोग अपने गाँवों व नगरों में प्रभातफेरी में जाया करते थे । इस तरह ब्रज के बाहर तो प्रभातफेरी का कार्यक्रम बढ़ता गया, अनेक प्रान्तों में प्रारम्भ हो गया लेकिन बरसाने में प्रभातफेरी नहीं होती थी । एक दिन महाराजजी ने कहा कि बाहर के लोग यहाँ आते हैं तो हम उनको प्रभातफेरी चलाने की, नगर-कीर्तन करने की प्रेरणा देते हैं लेकिन बरसाने में प्रभात-फेरी नहीं चल रही है । ये तो ऐसी ही बात हुई कि 'दीपक तले अँधेरा' । इसलिए अब बरसाने में भी प्रभातफेरी आरम्भ होनी

चाहिए । इस तरह श्रीबाबा के कहने पर फिर बरसाने में भी प्रभातफेरी का शुभारम्भ हुआ । बरसाने की प्रभात फेरी को आरम्भ हुए लगभग ३० वर्ष हो चुके हैं । श्रीबाबामहाराज की ही प्रेरणा से मैंने मानमन्दिर के रात्रि-कीर्तन में और सुबह प्रभात फेरी में सम्मिलित होने का अपना प्रतिदिन का नियम बना लिया । यह सब श्रीबाबा की ही कृपा से हो सका है ।

भाव-विह्वला 'ब्रजलीला'

बाबाश्री के संध्याकालीन सत्संग (४/७/२००८) से संकलित

ब्रजस्त्रियो यद् वाञ्छन्ति पुलिन्ध्यस्तृणवीरुधः । गावश्चारयतो गोपाः पादस्पर्शं महात्मनः ॥ (श्रीभागवतजी १०/८३/४३)

यह श्रीमद्भागवत का श्लोक है । पुरी में जो जगन्नाथलीला चल रही है, यह श्लोक उसका केन्द्रबिन्दु है । यह श्लोक भागवत के दशम स्कन्ध के उत्तरार्ध में है । जब एकबार द्वापर में सूर्यग्रहण पड़ा था और कुरुक्षेत्र में सब ब्रजवासी गये थे । यद्यपि गर्गसंहिता में तो किसी अन्य स्थान का वर्णन है किन्तु भागवत में कुरुक्षेत्र का उल्लेख किया गया है । उस समय पूर्ण सूर्यग्रहण था । अतः भारत के सभी लोग और ब्रजवासी भी कुरुक्षेत्र गये थे । वहाँ सभी को श्रीकृष्ण के दर्शन हुए । उस समय श्रीकृष्ण की रानियाँ भी कुरुक्षेत्र में आई थीं । पाण्डवों के साथ द्रौपदी भी वहाँ गयी थीं । इतना बड़ा मिलन अन्यत्र कहीं नहीं हुआ था । वहाँ द्वारका की पटरानियों ने भी अपनी-अपनी इच्छा प्रकट की । यद्यपि श्रीकृष्ण तो मथुरा, द्वारका आदि सभी स्थानों में उपस्थित रहते हैं । हस्तिनापुर भी आते-जाते रहते हैं किन्तु द्वारका की सभी रानियों ने कुरुक्षेत्र में द्रौपदी तथा ब्रजगोपियों के साथ भेंट होने पर यह कहा कि जो ब्रजरस है, वह अवश्य ही एक ऐसा रस है, जिसके लिए श्रीकृष्ण भी रोते हैं । उस रस के लिए ब्रजरज की आवश्यकता पड़ती है । यह भागवत का प्रमाण है । कुरुक्षेत्र में द्वारिका की रानियों ने कहा कि जिन वृन्दावनविहारी की चरणरज, युगल सरकार की चरणरज ब्रज की गोपियाँ चाहती हैं, ब्रज की भीलनियाँ चाहती हैं । उन युगल सरकार की चरणरज को ब्रज के लता-वृक्ष आदि सब चाहते हैं । ब्रज में गाय चराने वाले ग्वालबाल भी उस रज को चाहते हैं । वृन्दावनविहारीलाल की उस चरणरज की हम द्वारिका की श्रीकृष्णपत्नियाँ भी कामना करती हैं । श्रीमद्भागवत में द्वारका की रानियों का यह कथन जगन्नाथलीला का मूल सूत्र है । द्वारका की पटरानियाँ भी ब्रजरज चाहती हैं, वृन्दावनविहारी की चरणरज चाहती हैं । सभी उस रज को चाहते हैं । यह जो रानियों की इच्छा थी, यह कैसे पूरी होवे क्योंकि उनके अन्दर वृन्दावनरस की, ब्रजरज की लीला जानने की कामना तो थी ही और उन्होंने अपनी इस कामना को कुरुक्षेत्र में व्यक्त किया । द्रौपदी तथा ब्रजगोपिकाओं से भेंट होने के बाद सभी द्वारका की रानियाँ चली गयीं । द्वारका की रानियों को ब्रजवासियों का दर्शन हुआ था । ब्रजवासियों का दर्शन और उनका संवाद कृष्ण से हुआ । इस कारण से रानियों की उत्कण्ठा और बढ़ी । जिस समय वे द्वारका पहुँचीं, उनकी उत्कण्ठा बढ़ती गयी और उन सबने कहा कि हमें ब्रज की लीलाओं का ज्ञान कैसे होगा ? इसलिए उन लोगों ने विचार किया कि जिसने ब्रजलीला को देखा होगा, वही तो उसे सुना सकता है । ब्रजलीला किसने देखी है और यहाँ रनिवास में आकर कौन सुनाएगा ? सबने यही कहा कि वसुदेवपत्नी, बलराम की माता 'श्रीरोहिणीजी' ही ऐसी पात्र हैं, जो ब्रजलीला में भी रहीं, मथुरालीला में भी रहीं और द्वारकालीला में भी उपस्थित हैं । इनके अतिरिक्त तीनों लीलाओं को देखने वाला कोई नहीं है । सब रानियों ने यही विचार किया कि रोहिणीजी के पास चला जाए । अन्त में वे सभी रोहिणीजी के पास गयीं । रानियों ने रोहिणीजी से कहा – 'माताजी ! आपने ब्रजलीला देखी है, मथुरालीला देखी है तथा द्वारकालीला तो आप देख ही रही हैं । यह ब्रजरस तो ऐसा है कि हम लोग आपसे ब्रजलीला सुनना चाहती हैं, ब्रज की एक-एक लीला सुनना चाहती हैं ।' रोहिणीजी ने कहा कि मैं तुम लोगों को ब्रजलीला सुना तो दूँगी किन्तु एक समस्या है । रानियों ने पूछा कि क्या समस्या है ? रोहिणीजी ने कहा कि जब मैं ब्रजलीला सुनाऊँ, उस समय कृष्ण-बलराम उपस्थित नहीं होने चाहिए । रानियों ने कहा कि यह तो बड़ा आसान है । श्रीकृष्ण-बलराम तो राजसभा में चले जाते हैं । रोहिणीजी ने कहा – 'नहीं, कठिनाई यह है कि जिस समय

मैं ब्रजलीला कहूँगी, उस समय कृष्ण-बलराम आकर्षित होंगे और वहीं पहुँचेंगे, जहाँ मैं ब्रजलीला कह रही होऊँगी । इसलिए मैं तुम लोगों को ब्रजलीला नहीं सुनाऊँगी क्योंकि कृष्ण-बलराम ने यदि ब्रजलीला को सुन लिया तो उनकी प्रेम की ऐसी दशा होगी, जिसे तुम लोग सोच भी नहीं सकती । ब्रज में जो कृष्ण-बलराम थे, उनका रूप अलग था तथा द्वारका में उनका रूप अलग है । द्वारका वाले कृष्ण उस प्रेम भार को सँभाल नहीं पायेंगे ।'

प्रेम में दिव्य सात्विक भाव उत्पन्न होते हैं । जैसे चैतन्य महाप्रभु श्रीकृष्ण ही थे किन्तु वे राधाभाव का आस्वादन करने के लिए चैतन्य बने थे; श्रीकृष्ण होने पर भी वे राधा भाव को सँभाल नहीं पाए, 'राधाभाव' का उदय होने पर उनके हाथ-पाँव छः हाथ लम्बे हो जाते थे, उनकी अस्थि ग्रन्थियाँ खुल जाती थीं । संसार में ऐसा आज तक कभी देखा नहीं गया था । चैतन्य महाप्रभु श्रीकृष्ण होने पर भी 'राधा भाव' को सँभाल नहीं पाए । कभी-कभी राधा भाव प्रकट होने पर उनके सारे अंग सिकुड़कर पेट में चले जाते थे अथवा कभी तो उनके हाथ-पाँव अपनी ग्रंथियों को छोड़कर दूर-दूर तक फ़ैल जाते थे । इसीलिए रोहिणीजी ने कहा कि ये द्वारका के कृष्ण हैं; इनमें वह सामर्थ्य नहीं है, जो वृन्दावन के कृष्ण में थी । ये ब्रजलीला को सँभाल नहीं पायेंगे । ब्रजरस ऐसा ही परमाद्भुत है । रानियों ने पूछा कि ऐसी स्थिति में क्या किया जाए ? रोहिणीजी ने कहा कि यदि तुम लोग कृष्ण-बलराम का मंगल चाहती हो तो ब्रजलीला को मत सुनो । रानियों ने कहा – 'नहीं-नहीं, हम लोग कमरे के बाहर किसी को पहरे पर बैठा देंगी । यदि कृष्ण-बलराम भीतर आने का प्रयास भी करेंगे तो उन्हें आने नहीं दिया जाएगा ।' रोहिणीजी ने पूछा कि कृष्ण-बलराम को भीतर आने से कौन रोकेगा ? रानियों ने कहा कि सुभद्राजी पहरे पर बैठेंगी और वह कृष्ण-बलराम को भीतर प्रवेश नहीं करने देंगी । सुभद्रा कृष्ण-बलराम की बड़ी प्यारी बहन हैं, वह अड़ जायेंगी तो कृष्ण-बलराम भीतर नहीं आ सकेंगे । रानियों ने रोहिणीजी से बहुत आग्रह किया तो वे ब्रजलीला सुनाने के लिए तैयार हो गयीं ।

एक पद में कहा गया है कि जब श्रीकृष्ण के आदेश से उद्धवजी ब्रज में गये थे तो गोपियों के प्रेम को देखकर उन्होंने गोपियों को अपना गुरु बनाया था । उस समय गोपियों ने उद्धवजी को ब्रजलीला का ज्ञान कराया था । उन्होंने उद्धवजी को ब्रज का एक-एक लीलास्थल दिखाया और वहाँ की एक-एक लीला का वर्णन किया । सूरदासजी ने इसे अपने एक पद में गाया है – **'इहाँ हरि जू बहु क्रीड़ा करी । सो तो चित ते जात न टरी ॥'** गोपियों ने ब्रजलीला का वर्णन करते हुए कहा कि उद्धवजी ! इस स्थान पर श्रीकृष्ण ने पूतना का संहार किया था । यहाँ पर श्रीकृष्ण ने शकटासुर और तृणावर्त का वध किया था । इस वन में उन्होंने वत्सासुर को मारा था । अघासुर और बकासुर को यहाँ मारा था । तालवन में दाऊ जी ने धेनुकासुर को मारा था । देखो, इस वन में उन्होंने प्रलम्बासुर को मारा था । यहाँ पर ब्रह्मा ने आकर हमारे बछड़ों और ग्वाल बालों का हरण किया था । यहाँ उन्होंने गोवर्धन पर्वत को उठाया था और इस वन में उन्होंने रास लीला की थी । जिस प्रकार गोपियों ने उद्धव जी को ब्रज लीला सुनायी, वैसे ही रोहिणी जी ने ब्रज लीला के गूढ़ रहस्यों को सुनाना आरम्भ किया । केवल असुरों के वध की ही लीला नहीं सुनायी । रोहिणी जी ने बताया कि कैसे श्रीकृष्ण गोपियों के द्वारा नचाये जाने पर प्रेम के कारण ब्रज में नृत्य किया करते थे । कैसे वे उनकी आधीनता करते थे । किस प्रकार वे ग्वालबालों के साथ नाचते थे ? जब रोहिणी जी ने ब्रज लीला सुनाना आरम्भ किया तो द्वारका की राजसभा में कृष्ण-बलराम का आकर्षण हुआ । श्रीकृष्ण ने बलरामजी की ओर देखा और बलरामजी ने श्रीकृष्ण की ओर देखा और एकदम से वे राजसभा में ब्रजलीला के आकर्षण से खिंचे तथा दौड़ पड़े । इस ब्रज रस में इतना अधिक आकर्षण है । यही जगन्नाथ लीला का रहस्य है, यह बड़ा ही गूढ़ रहस्य है । श्रीकृष्ण और बलराम ब्रज लीला को सुनने के लिए उन्मक्त होकर पागलों की तरह रानियों के महल की ओर दौड़ पड़े । द्वारका की राजसभा में कोई भी इस रहस्य को समझ नहीं पाया । सभी लोग कहने लगे कि ऐसा कैसे हो गया ? ये तो द्वारकाधीश हैं । ये इस तरह पागलों की तरह राजसभा को छोड़कर कहाँ भागे जा रहे हैं ? कृष्ण-बलराम भागते हुए उस महल में पहुँच गये, जहाँ रोहिणीजी ब्रज की कथा सुना रही थीं । बिना किसी सूचना के, बिना बताये अन्तःकरण से अन्तःकरण तक जो समाचार पहुँच जाता है, उसे अंग्रेजी में

टेलीपैथी (telypathy) कहते हैं । अपने आप ही मन कह देता है । भगवान् की तो बात ही क्या, संसार में भी पता चल जाता है । सतयुग में पता पड़ जाता है । अच्छे भक्तों को पता चल जाता है । रावण के पुत्र मेघनाद की पत्नी सुलोचना को उसके वध के बारे में पता चल गया था । गुरु-शिष्य के सम्बन्ध में भी यही बात घटती है । जैसे इसी कलियुग में अमीर खुसरो था । वह बहुत प्रसिद्ध कवि हुआ है । एक राजा ने उसकी कविता से प्रसन्न होकर हाथी के बराबर रत्न उसे पुरस्कार में दिए थे । खुसरो 'निजामुद्दीन औलिया' को अपना गुरु मानता था । वह सच्चा गुरु भक्त हुआ है । आजकल तो गुरु शिष्य के सम्बन्ध में केवल व्यवहार मात्र ही है, गुरु भक्ति कुछ भी नहीं है । गुरुभक्ति तो बहुत बड़ी चीज है । भगवान् की भक्ति से भी गुरुभक्ति बड़ी है । एक बार एक ब्राह्मण 'निजामुद्दीन औलिया' के पास गया और बोला कि मेरी बेटी का विवाह है । औलियाजी तो फ़क़ीर थे, वे अपने पास कुछ भी नहीं रखते थे; उन्होंने ब्राह्मण से कहा – 'अच्छा, कल आना ।' दूसरे दिन ब्राह्मण फिर से उनके पास पहुँचा । औलिया ने कहा – 'अरे भाई ! मैं तुमको क्या दूँ ? अच्छा, कल आना ।' ब्राह्मण तीसरे दिन भी उनके पास गया । अबकी बार भी औलिया ने कहा – 'अरे ! मैं तुमको क्या दूँ ?' औलिया अपने पास कुछ रखते नहीं थे किन्तु वे सिद्ध थे । इस बार भी उन्होंने ब्राह्मण से यही कहा कि कल आना । वह ब्राह्मण चौथे दिन उनके पास गया । निजामुद्दीन औलिया ने कहा – 'अरे भाई ! मैं तुमको क्या दूँ ? अच्छा लो, यह खड़ाऊँ ले जाओ ।' औलियाजी खड़ाऊँ पहनते थे । वही उन्होंने ब्राह्मण को दे दिया । ब्राह्मण खड़ाऊँ लेकर चला । वह जानता था कि औलिया सिद्ध फ़क़ीर हैं, फिर भी मन में सोचने लगा कि कहीं लकड़ी की खड़ाऊँ से पैसा मिलता है ? क्या उससे विवाह होता है ? उसी रास्ते से खुसरो साहब आ रहे थे । हाथी के बराबर जो सोना उनको दिया गया था, उसको लेकर वे आ रहे थे । वे मन ही मन सोच रहे थे कि इस सोने से मैं क्या करूँगा ? इसको ले जाकर अपने गुरुजी को दे दूँगा । वे बड़े ही गुरुभक्त थे । जब वे आ रहे थे और इधर से वह ब्राह्मण खुसरोजी के गुरु की लकड़ी की खड़ाऊँ लेकर जा रहा था । जैसे ही ब्राह्मण खुसरो के निकट पहुँचा । उसी समय खुसरो ने कहा – 'अरे भाई रुको, सब लोग रुको ।' ब्राह्मण ने उनसे पूछा – 'क्या बात है ?' खुसरो ने कहा कि यहाँ पर मेरे गुरु की सुगन्ध आ रही है । उनके साथ के लोगों ने कहा कि यहाँ गुरुदेव की सुगन्ध कहाँ से आएगी, अभी तो यहाँ से उनका घर बहुत दूर है । खुसरों ने कहा – 'नहीं, मैं झूठ नहीं बोल रहा हूँ । यहाँ कोई कारण अवश्य ही है । मैं यहाँ से आगे नहीं जा सकता हूँ क्योंकि जब मैं गुरुदेव के पास बैठता था तो जैसी सुगन्ध, जैसी शान्ति, जैसे वातावरण का मुझे वहाँ अनुभव होता था, वही यहाँ भी है । अतः गुरुदेव तो यहीं हैं । मैं यहाँ से आगे कैसे चला जाऊँगा ।' उस ब्राह्मण ने पूछा – 'क्या बात है ?' खुसरो ने कहा कि मैं अपने गुरुदेव निजामुद्दीन साहब के दर्शन करने जा रहा था किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि वे यहीं हैं । ब्राह्मण बोला कि आप ठीक कह रहे हैं । मेरे पास औलिया साहब की खड़ाऊँ है । खुसरो ने बड़े ही आश्चर्य से कहा – 'अरे, जरा मुझे तो दिखाना ।' खुसरो ने देखा तो ब्राह्मण के पास गुरुदेव की खड़ाऊँ थी । खुसरो ने पूछा कि क्या तुम मुझको इसे दे सकते हो ? ब्राह्मण ने कहा कि मैं तुम्हें इनको कैसे दे सकता हूँ ? खुसरो ने कहा कि मेरे पास जो भी सोना है, वह सब तुम मुझसे ले लो किन्तु ये खड़ाऊँ मुझे दे दो । ब्राह्मण ने कहा – 'ठीक है, मुझे तो धन की आवश्यकता ही थी । मैं सोच रहा था कि औलिया साहब सिद्ध पुरुष हैं । उन्होंने मुझे अपनी खड़ाऊँ दी है तो इसमें अवश्य ही कोई चमत्कार होगा । मुझे तो अब चमत्कार मिल गया क्योंकि मुझे तो धन चाहिए ।' खुसरो ने उस ब्राह्मण से अपने गुरुदेव की खड़ाऊँ ले ली और उसको सारा सोना और समस्त रत्न दे दिया और फिर अपने गुरुदेव के दर्शन करने पहुँचा । गुरुदेव ने खुसरो से पूछा कि ये मेरी खड़ाऊँ तुमको कहाँ से मिल गईं ? खुसरो ने कहा कि गुरुदेव ! यह तो जिसके भाग्य में होती है, उसी को मिलती हैं । उस ब्राह्मण को धन चाहिए था, इसलिए मैंने उसको धन दे दिया । मेरे लिए तो यह खड़ाऊँ ही धन हैं ।

इसलिए ऐसा तो संसार में भी होता है । यह मैंने (बाबाश्री ने) एक उदाहरण दिया । ऐसा सच्चे गुरु और उनके शिष्यों के बीच एक सम्बन्ध होता है, फिर भगवान् के बारे में और उसमें भी ब्रजरस के बारे में क्या कहा जाए ? अतः जब ब्रजरस की कथा हो रही थी तो उसको सुनने के लिए कृष्ण-बलदेव महल की ओर दौड़े । इतना अधिक आकर्षण उन्हें हुआ कि

वे एक पल को भी द्वारका की राजसभा में ठहर नहीं सके और दौड़ते हुए रोहणीजी के महल की ओर दौड़ पड़े । उनको महल में कौन रोक सकता था ? उनको देखकर सभी द्वारपाल एक ओर हटते चले गये । भला कृष्ण-बलराम को कौन रोकेगा ? अन्त में वे रोहिणीजी के महल के पास पहुँचे तो देखा कि वहाँ दरवाजे पर उनकी बहन सुभद्रा बैठी हुई है और भीतर रोहिणीजी कथा कह रही थीं ।

इहाँ हरि जु बहु क्रीड़ा करी । सो तो चित ते जात न टरी ॥ शरद् निशा में रास रच्यौ इहाँ ।
सो सुख हमपे बरन्यौ जात कहाँ ॥ इहाँ हरि खेलत आँख मिचाई । कहाँ लगि बरनैं हरि लीला गाई ॥

यह श्रीजी की कृपा है कि हम लोग गह्वरवन में बैठे हैं । यह वही स्थल है, जहाँ रास लीला होती है । यहाँ श्रीकृष्ण आँख मिचौनी खेलते थे ।

वस्त्र हमारे हरि जु इहाँ हरि । कहाँ लगि कहिये जे कौतुक करि ॥ इहाँ गोवर्धन कर हरि धार्‌यो ।
मेघ वारि ते हमें निवार्‌यो ॥ सुनि-सुनि ऊधौ प्रेम मगन भयौ । लोटत धर पर ज्ञान गरब गयौ ॥

गोपिकाओं के मुख से श्रीकृष्ण लीलाओं को सुनकर उद्धव जी प्रेम में मगन होकर ब्रजभूमि में लोटने लगे ।

निरखत ब्रजभूमि अति सुख पावै । 'सूर' प्रभु कौ पुनि-पुनि गावै ॥

रोहणी माता अत्यधिक डूबकर श्रीकृष्ण की ब्रजलीला का वर्णन कर रही थीं । इधर अचानक ही श्रीकृष्ण-बलराम वहाँ आ पहुँचे तो सुभद्रा ने उनको रोक दिया । दरवाजा भीतर से बन्द था और दरवाजे के बाहर सुभद्रा खड़ी थीं । कृष्ण-बलदेव ने कहा – 'सुभद्रे ! ये क्या ?' सुभद्रा ने कहा – 'हाँ भइया ! इस समय तुम लोग भीतर नहीं जा सकते । ' कृष्ण-बलदेव ने पूछा – 'क्यों ?' सुभद्रा ने कहा – 'रोहिणी माता की ऐसी ही आज्ञा है । इस समय तुम लोग भीतर नहीं जा सकते हो । ' कृष्ण-बलदेव – 'अरी सुभद्रे ! हमको रोकती है । ' सुभद्रा – 'हाँ ! तुम्हें रोकने के लिए ही मैं यहाँ खड़ी हूँ । माता रोहिणी को यह पता था कि तुम लोग आओगे । इसीलिए उन्होंने मुझे पहले से ही पहरे पर बैठा रखा है । मैं तुम्हें भीतर नहीं जाने दूँगी । ' कृष्ण-बलदेव – 'अच्छा ! तू हमें भीतर नहीं जाने देगी ?' सुभद्रा – 'नहीं । '

जब सुभद्रा ने कृष्ण-बलराम को भीतर प्रवेश करने से मना कर दिया तो वे दोनों दरवाजे पर ही खड़े हो गये । ब्रज की लीला इतनी प्यारी है । जिसके भीतर अनुराग है, वह इसे समझ सकता है । हम जैसे लोग जो संसार के विषयों में, स्वादिष्ट भोजन में, रुपये-पैसे में आसक्त हैं, वे इसे कैसे समझ सकते हैं ? देह-इन्द्रियों में, इनके विषयों में फँसने वाले ब्रज को नहीं समझ सकते हैं । छोटे-छोटे प्रलोभनों के कारण कि कुछ पैसा मिल जाए, लोग ब्रज को छोड़ देते हैं । ब्रज के बाहर भाग खड़े होते हैं । इस तरह ब्रज लीला को हम जैसे लोग क्या समझ सकते हैं ? जिस रस के लिए स्वयं कृष्ण-बलराम दरवाजे के बाहर बैठकर ब्रज लीला सुनने लगे क्योंकि रोहिणी माता की आवाज थोड़ी-थोड़ी बाहर आ रही थी । वे प्रेम में डूबकर बता रही थीं कि ऐसा था चीरहरण, ऐसी थी रासलीला, ऐसा था ब्रजगोपियों का प्रेम । ब्रजलीला को सुनकर कृष्ण-बलराम के हृदय में प्रेम का आवेश आया और उनका शरीर पिघल गया । उस प्रेम के भार को द्वारकानाथ कृष्ण-बलराम सँभाल नहीं सके । ब्रज के कृष्ण कैसे सँभाल लेते हैं ? ब्रज में जो कृष्ण-बलराम हैं, वे गोप वेषधारी हैं, ब्रज के गोप भाव भावित हैं । जबकि द्वारका के कृष्ण-बलराम क्षात्र धर्म के आश्रित हैं, उनका क्षत्रिय आवेश है । वे ऐश्वर्य से युक्त हैं । इसलिए वे ब्रज के प्रेम को नहीं सँभाल सकते हैं । इसका सबसे बड़ा उदाहरण हैं जैसे चैतन्य महाप्रभु का शरीर राधा भाव के उदय होने पर विगलित हो जाता था । वे राधा भाव को सँभाल नहीं सकते थे, सम्भाल ही नहीं सके । ऐसा कई बार हुआ है । उनके अंग, उनकी हड्डियाँ खुलकर कई-कई हाथ फ़ैल जाते थे । कभी-कभी उनका आकार कछुये जैसा हो जाता था और उनके हाथ-पाँव कछुये की तरह पेट के भीतर घुस जाते थे । इस तरह राधा भाव को महाप्रभु चैतन्य सँभाल नहीं पाए । उसी प्रकार द्वारकानाथ कृष्ण को भी ब्रज की प्रेम लीला को सुनकर जो प्रेमावेश आया, उसको वे सँभाल नहीं सके । ये उसका रहस्य है । कृष्ण-बलराम क्यों पिघल गये, क्यों द्रवीभूत हो गये, उसका रहस्य यह है । प्रेम ऐसी शक्ति है । इसके सैकड़ों उदाहरण हैं । सारी ब्रज लीला इसी से भरी हुई है । जब आधी रात को

ब्रज में वंशी बजी तो सभी गोपियाँ दौड़कर कृष्ण के पास चलीं । जब वे दौड़कर जा रही थीं तो किसी गोपी के पैर में आधी रात को अजगर लिपट गया, किन्तु वे इस प्रकार जा रही थीं जैसे किसी हथिनी के पाँव में कोई लता उलझ जाए । ये सब प्रेम के बड़े-बड़े चमत्कार हैं । ब्रज के रसिक महापुरुषों ने अपने पदों में इनका वर्णन किया है । इसे साधारण बुद्धि से समझा नहीं जा सकता । प्रेम की जो विचित्र लीलायें हैं, हम जैसे नासमझ, मूर्ख लोग उन्हें नहीं समझ सकते हैं क्योंकि हम लोगों के हृदय में प्रेम ही नहीं है । हमारे हृदय में तो विषयों की वासनायें भरी हुई हैं । ऐसी स्थिति में हम उस प्रेम को कैसे समझ सकते हैं ? प्रेम एक ऐसी शक्ति है जो भगवान् को भी नचाती है और भगवान् को उसके आधीन होकर नाचना पड़ता है । भगवान् को प्रेम के आधीन होना पड़ता है । भागवत में शुकदेवजी कहते हैं –

गोपीभिः स्तोभितोऽनृत्यद् भगवान् बालवत् क्वचित् । उद्गायति क्वचिन्मुग्धस्तद्वशो दारुयन्त्रवत् ॥ (श्रीभागवतजी १०/११/७)

बिभर्ति क्वचिदाज्ञप्तः पीठकोन्मानपादुकम् । बाहुक्षेपं च कुरुते स्वानां च प्रीतिमावहन् ॥ (श्रीभागवतजी १०/११/८)

रासलीला के प्रकरण में भागवत में वर्णन है –

एवं परिष्वङ्गकराभिमर्शस्निग्धेक्षणोद्दामविलासहासैः ।
रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभिर्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः ॥ (श्रीभागवतजी १०/३३/१७)

इस श्लोक में देखिये कि प्रेम कितना शक्तिशाली है, तब पता पड़ेगा कि इस प्रेम में कितनी शक्ति है, जो अनन्त शक्तिमान को कठपुतली की तरह नचा देती है । भागवत में '१०/११/७' और '१०/११/८' में तो कृष्ण की बाललीला का वर्णन है कि गोपियाँ बालकृष्ण को नचाती थीं, गवाती थीं, कृष्ण गोपियों के लिए पीढ़ा (पटरा) लेकर जाते थे, कभी उनकी चरण पादुका को सिर पर रखकर ले जाते थे, उनकी आज्ञा का पालन करते थे । यह तो उनकी बाललीला थी किन्तु उपरोक्त वर्णित श्लोक '१०/३३/१७' भागवत की रासपञ्चाध्यायी का है । गोपियों ने कृष्ण को अपनी भुजाओं में बाँध लिया । 'परिष्वङ्ग' को हम लोग नहीं जानते हैं । यह प्रेमशास्त्र की बातें हैं जिसके अनुसार आठ प्रकार का आलिंगन, आठ प्रकार का चुम्बन और आठ प्रकार का परिरम्भण होता है । आलिंगन और परिरम्भण को मिलाकर 'परिष्वङ्ग' बनता है । 'एवं परिष्वङ्गकराभिमर्श' – हाथों से स्पर्श करना, 'स्निग्धेक्षणो' – प्रेम से देखना, 'उद्दामविलासहासैः' – परिहास, हास-विलास । 'रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभि' – 'रमेश' का अर्थ है - जो अनन्त लक्ष्मियों का पति है, जो महाऐश्वर्यशालिनी का पति है, वह भी ब्रज में आकर प्रेम के अधीन होकर ब्रजसुन्दरियों के साथ रमण करने लगा । 'यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः' – जैसे एक बालक अपनी परछायीं के साथ खेलता है । ऐसी उपमा क्यों दी गयी ? जैसे श्यामसुन्दर की मणिखम्ब लीला है । बाल कृष्ण मणिखम्ब में अपना प्रतिबिम्ब देखते हैं तो समझते हैं कि सच में इसके भीतर कोई बालक बैठा है । एक बार हमने मान मन्दिर के रात के कीर्तन में देखा कि एक छोटा सा बच्चा बिजली के प्रकाश के कारण पड़ती अपनी परछाईं के साथ खेल रहा था । वह समझ नहीं पा रहा था कि यह परछाईं है या कुछ और है । अनन्त सर्वशक्तिमान भगवान् भी ब्रज में गोपियों के प्रेम के कारण ऐसा बुद्धू बन गया और उनके साथ इस प्रकार रमण करने लगा जैसे एक बच्चा अपनी परछाईं के साथ खेलता है । इतना सशक्त है प्रेम । संसारी प्रेम भी जीव को अन्धा कर देता है । मनुष्य भूल जाता है कि क्या उचित है और क्या अनुचित है ? कौन सा स्थान, कौन सी क्रिया, संसारी प्रेम में यह सब भूल जाता है । लौकिक प्रेम में, लौकिक आसक्ति में इतनी शक्ति होती है कि मनुष्य अपने को भूल जाता है, लौकिक प्रेम आत्म विस्मृति कर देता है । मनुष्य इतना आत्मविस्मृत हो जाता है कि उसको होश ही नहीं रहता है । हम कहाँ हैं, कौन देख रहा है, इसका मनुष्य को कुछ भी होश नहीं रहता है । संसारी आसक्ति में इतनी शक्ति होती है, फिर जो दिव्य प्रेम है, उसका तो कहना ही क्या ? जैसे एक बच्चा अपनी परछाईं के साथ खेलता है, इस प्रेम ने अनन्त सर्वशक्तिमान भगवान् को ऐसा बना दिया । यह प्रेम इतना सशक्त है । गोपियों को महारास में प्रेम के कारण अपने वस्त्र, आभूषण और जूड़े को सम्भालने की भी शक्ति नहीं रही । यह प्रेम की एक दशा होती है, उसी प्रकार द्वारका में ब्रज लीला को सुनकर कृष्ण-बलराम का शरीर भी महल के द्वार पर द्रवीभूत हो गया । प्रेम एक ऐसी शक्ति है । जब कृष्ण-बलराम द्रवीभूत हो गये

तो होनहार की बात उसी समय भगवदिच्छा से नारद जी वहाँ आ गये । सुभद्रा जी ने नारदजी को प्रणाम किया । वे उनको नहीं रोक सकीं क्योंकि उनको तो कृष्ण-बलराम को रोकना था । नारदजी सर्वत्र पूज्य हैं । उनको कोई नहीं रोकता है । नारदजी के लिए दरवाजा खोला गया । यह देखकर रोहिणी माता ने कथा सुनाना बन्द कर दिया । उस समय कृष्ण-बलराम होश में आ गये, प्रेम में द्रवीभूत होने के कारण कृष्ण-बलराम के हाथ आधे ही रह गये थे । नारदजी बोले कि प्रभो ! आपके द्रवित रूप के दर्शन तो मुझे आज पहली बार ही हुए । मेरी आपसे प्रार्थना है कि आपके ऐसे प्रेम के कारण द्रवित विग्रह के दर्शन संसार के सभी लोगों को सुलभ हो जाएँ । नारदजी ने जब भगवान् से ऐसी प्रार्थना की तो उन्होंने कहा कि ठीक है, मैं संसार के लोगों को ऐसा ही दर्शन दूँगा । नारदजी भगवान् से वरदान प्राप्त करके चले गये । अब कलियुग के प्रारम्भ में इन्द्रद्युम्न नाम के एक राजा हुए । उनको पता पड़ा कि उड़ीसा में नील माधव भगवान् का एक विग्रह है । नारदजी की इच्छा अब कलियुग में पूरी होगी । जगन्नाथ लीला का प्रारम्भ द्वारका से हुआ । द्वारका से कुरुक्षेत्र, कुरुक्षेत्र से जगन्नाथ पुरी और अब कलियुग में जगन्नाथ जी का विग्रह कैसे सबके सामने आया ? राजा इन्द्रद्युम्न ने सोचा कि नीलमाधव भगवान् का विग्रह जहाँ भी है, मुझे उसे वहाँ से लाना चाहिए । जब वे नीलाचल पर्वत पर गये तो पता चला कि देवता उस विग्रह को उठा ले गये थे । राजा बड़े ही भक्त थे । उनको आकाशवाणी सुनायी दी – 'घबराओ नहीं । तुम्हें मेरे दारु (लकड़ी) के विग्रह की प्राप्त होगी । तुम समुद्र तट पर जाओ ।' राजा इन्द्रद्युम्न समुद्र तट पर गये । भगवत्प्रेरणा से समुद्र की लहरों से एक दिव्य काष्ठ बहता हुआ चला आ रहा था । इन्द्रद्युम्न समझ गये कि यही दिव्य दारु (लकड़ी) है । वे उस दारु को लेकर आये और अपने महल में विश्वकर्मा का आवाहन किया । उस समय विश्वकर्मा वहाँ आये । उन्होंने कहा कि मैं भगवान् का 'दारु-विग्रह' तो बना दूँगा किन्तु शर्त यह है कि मुझसे कोई मनुष्य बोले नहीं । ऐसा कहकर विश्वकर्मा ने भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया और विग्रह बनाने लगे । कई दिन बीत गये, उनके विग्रह बनाने वाले उपकरणों की आवाज आना बंद हो गयी तो राजा इन्द्रद्युम्न की रानी ने हठ किया और कहा कि वह विग्रह बनाने वाला बढ़ई जीवित भी है कि नहीं । कहीं उसकी मृत्यु तो नहीं हो गयी ? राजा ने कहा – 'नहीं-नहीं, उन्होंने कहा था कि तुम द्वार मत खोलना । जब मूर्ति बन जायेगी तो मैं स्वयं ही द्वार खोल दूँगा ।' किन्तु भगवान् की ही ऐसी इच्छा थी और स्त्री हठ के कारण राजा इन्द्रद्युम्न को दरवाजा खोलना पड़ा । जब दरवाजा खोला गया तो सारा विग्रह बन गया था, केवल हाथ पूरे नहीं बन पाए थे । विश्वकर्माजी से राजा इन्द्रद्युम्न ने कहा कि विग्रह पूरा बनाइये तो उन्होंने कहा कि भगवान् की यही इच्छा है । ये हाथ इतने ही रहेंगे क्योंकि भगवान् ने द्वापर में नारदजी को वरदान दिया था कि हम कलियुग में लोगों को गलित विग्रह के रूप में दर्शन देंगे । उसी वरदान के कारण रानी के आग्रह से राजा इन्द्रद्युम्न ने दरवाजा खोल दिया और जगन्नाथ जी के हाथ पूरे नहीं बन पाए । यह जगन्नाथजी के विग्रह की संक्षिप्त कथा है । रथयात्रा का प्रसंग यह है कि सुभद्रा जी ने कृष्ण-बलराम से प्रार्थना की थी कि मुझे नगर भ्रमण करवाइए । सुभद्रा कृष्ण-बलराम की लाड़ली बहन थीं । सुभद्रा की इच्छा को पूर्ण करने के लिए कृष्ण-बलराम ने उनके साथ रथ पर बैठकर नगर भ्रमण किया था । इसीलिए पुरी में आज भी रथयात्रा होती है ।

मान मंदिर लीला स्थल श्रीराधाकृष्ण की लीला स्थलियों में सबसे प्रमुख है
इस अति विलक्षण लीला स्थली के पुरुद्धार कार्य में जुड़ कर धाम सेवा का दुर्लभ लाभ प्राप्त करें
सेवा राशि देकर रसीद अवश्य प्राप्त करें।
ACCOUNT NUMBER: 591099273386666
IFSC CODE: HDFC0000268
BANK: HDFC BANK LTD
BRANCH: BSA COLLEGE, MATHURA
संपर्क: 9927338666
www.maanmandir.org
आपकी सेवा राशि आयकर अधिनियम 80G/12A के अंतर्गत आयकर छूट के लिए मान्य है
रजिस्ट्रेशन नंबर AADTS716DEF2021401

ब्रजरस-प्रदायिनी 'श्रीजगन्नाथ-रथयात्रा'

श्रीजगन्नाथ-रथयात्रा-महोत्सव का परम मंगलकारी दिवस 'आषाढ़, शुक्ल, द्वितीया' है । इस परम पावनमय अवसर पर श्रीजगन्नाथपुरी में 'श्रीभगवान् जगन्नाथजी' श्रीबलराम भैया व सुभद्रा बहिन के साथ रथ पर आरूढ़ हो नृत्यगानमय आनन्द-उत्सव देखते हुए पुरी-भ्रमण कर 'श्रीगुण्डिचा-मन्दिर' में जाकर श्रीब्रजभक्ति का रसीला महोत्सव मनाते हैं । इस विश्वमंगलकारी रथ-यात्रा में लाखों भावुक भक्तजनों का समूह एक विशेष भक्तिमय वातावरण बना देता है । यहाँ तक कि केवल भारतवर्ष में ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व के सनातन धर्मी भक्तजन अपने-अपने स्थान से रथयात्रा को निकालकर संकीर्तन में नाचते-गाते हुए अति आनन्द-हर्ष-उल्लास के साथ इस महा महोत्सव को मनाते हैं । भारतवर्ष के प्रत्येक राज्य में लोग इस 'रथ-यात्रा' रूपी भक्तिमय-आराधन-महोत्सव को मनाकर जन-जन में ब्रजभाव से भावित सरस भक्ति का संचार कर देते हैं । श्रीजगन्नाथ भगवान् कलिकाल में जीवों पर परम रसमयी कृपा करने के लिए ही प्रकट हुए हैं, जो एकमात्र 'श्रीब्रज-महिमा, ब्रजभाव' ही सुनना चाहते हैं तथा अपने शरणागत भक्तजनों में भी ब्रजरस का संचार करते हैं । वास्तव में श्रीभगवान् के प्रत्येक प्राकट्य-अवतार का प्रमुख प्रयोजन भी तो केवल विशुद्ध भक्ति का जन-जन में प्रचार-प्रसार करना ही होता है । इस भाव को गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराज ने सरल-सरस शब्दों में लिखा है –

ब्यापक बिस्वरूप भगवाना । तेहिं धरि देह चरित कृत नाना ॥
सो केवल भगतन हित लागी । परम कृपाल प्रनत अनुरागी ॥

इसी प्रकार श्रीजगन्नाथ भगवान् भी असीम अनुकम्पा लिए हुए समस्त सांसारिक जीवों का परम कल्याण करने के लिए नित्य-निरन्तर तत्पर रहते हैं, जो कलिकाल के परम जाग्रत देव हैं, जो सहज ही रसमयी भक्ति को देकर अति आनन्दित होते हैं । ऐसे परम ब्रजभावुक श्रीजगन्नाथ भगवान् का महोत्सव मनाने से उनकी अनन्त कृपा-करुणा-दया का स्वरूप सहज ही साक्षात् प्रकट हो जाता है । परम मंगलकारी 'श्रीजगन्नाथ-रथयात्रा' का महोत्सव है, जिसका स्मरण-चिंतन-कथन-श्रवण व आराधन सहज ही जन-जन को श्रीब्रजभावमयी भक्ति में अभिसिंचित करने लगता है । श्रीजगन्नाथ भगवान् की अवतरण-कथा को सुनने से ये अवश्य ही प्रतीत होता है कि श्रीभगवान् को 'ब्रज' सर्वाधिक प्राणप्रिय है । फिर हो भी क्यों न ? क्योंकि जिन श्रीश्यामसुन्दर की आत्मधन, जीवन-संजीवनी श्रीराधिकारानी ही ब्रजभूमि की अधिष्ठात्री (अधीश्वरी) परमदेवी हैं । इसीलिये श्रीकृष्ण मथुरा, द्वारिका में भी 'ब्रज व ब्रजपरिकर की लीलाओं' को ही रह-रहकर 'अति विरह में तड़पते हुए' नित्य-निरन्तर याद करते रहे । जिस समय श्रीकृष्ण मथुरा में 'ब्रज-विरह' में रुदन करते तो उद्धवजी को भी आश्चर्य होता, जब श्रीयमुनाजी के किनारे उद्धवजी के साथ घूमने जाते तो यमुना की धारा को देखकर फूट-फूटकर रोने लगते; इस ब्रज-प्रेम का यथार्थ अनुभव 'वास्तविक बोध' श्रीउद्धवजीमहाराज को प्रेम की पाठशाला में आने पर 'ब्रजगोपियों का प्रेमालाप व विचित्र प्रेम की दशाओं' को देखने-सुनने से ही हुआ; तब उद्धवजी भी भाव में विह्वल होकर रोने लगे, ब्रज की लता-पता इत्यादि बनना स्वीकार कर लिया लेकिन एक क्षण के लिए भी ब्रज का वियोग सहन स्वीकार नहीं किया । इसीलिये श्रीउद्धवजी एक रूप से नित्य-निरन्तर ब्रज-वसुन्धरा में ही निवास करते हैं । द्वारिका में भी श्रीकृष्ण रुक्मिणी की गोद में लेटे हुए ब्रज की ही याद करते – 'रुक्मिणी ! मोहि ब्रज बिसरत नाहिं ।' इस विचित्र भाव-दशा को देखकर रुक्मिणी इत्यादि रानी-पटरानियों को भी बहुत आश्चर्य होता था कि हमारे स्वामी द्वारिकाधीश को यहाँ राजमहलों में सभी प्रकार की सुख-सुविधा है, फिर भी ब्रज की याद भूलते ही नहीं हैं, हर समय इनके तन-मन-वचन में ब्रज-ब्रजदेवियों-श्रीराधा ....का ही चिंतन-मनन रहता है । वस्तुतः ब्रज की ऐसी क्या महिमा है ? ऐसा विचार-विमर्श द्वारिका की समस्त रानियाँ परस्पर करती रहती थीं । एकबार कुरुक्षेत्र में पहली बार द्वारिकावासियों को ब्रजवासियों का दर्शन हुआ, तभी से ब्रज की महिमा सुनने की प्रबल इच्छा द्वारिका की रानियों की और अधिक बढ़ गई; जब उन्होंने द्वारिका में रोहिणी मैया से श्रद्धापूर्वक ब्रजलीलाओं को सुना, तब ब्रजभूमि के वास्तविक प्रेमतत्त्व को कुछ अंश में यथार्थ रूप से समझ पाईं । जब ब्रज की कथा 'रोहिणी मैया' द्वारिका की रानियों को सुना रहीं थीं, तो उस कथा की भाव तरंगों

से श्रीकृष्ण-बलराम-सुभद्राजी भाव-विह्वलता को प्राप्त होने से उनके अंग-भंग भी हुए; उसी ब्रजभाव से भावित द्रवित स्वरूप में नारदजी के आग्रह पर कलिकाल में श्रीजगन्नाथ-विग्रह के रूप में अवतरित हुए हैं ।

श्रीभगवान् जगन्नाथजी के प्राकट्य की संक्षिप्त काव्यमय कथा

रसिया-तर्ज – दिखाओ गिरिधारी, दरद की मैं मारी

बन गयौ बनवारी, ब्रजरस प्रेम भिखारी ।

ब्रजगोपिन कौ प्रेम ही, जीवन है नन्दलाल । राधारानी कौ अनन्य, करैं याद सब काल ॥
बन गयौ बनवारी, ब्रजरस प्रेम भिखारी ।

हौं बैचेन कहैं ऊधौं से, है ब्रज अपरम्पार । जायें निकट यमुना तट पै, व्याकुल लख रसधार ॥
बन गयौ बनवारी, ब्रजरस प्रेम भिखारी ।

एक बार कुरुक्षेत्र में, आये भक्त अपार । प्रगटी ब्रजवासिन्ह की महिमा, अनुपम भानुदुलार ॥
बन गयौ बनवारी, ब्रजरस प्रेम भिखारी ।

द्वारिका-रानी-पटरानी, ब्रज सुनवैं ललचाँय । लीला कहैं रोहिणी मैया, परमानन्द समाय ॥
बन गयौ बनवारी, ब्रजरस प्रेम भिखारी ।

भाव-निमग्न भए द्वार पै, कृष्ण सुभद्रा राम । मुनि नारद ने करी अर्चना, यही रूप अभिराम ॥
बन गयौ बनवारी, ब्रजरस प्रेम भिखारी ।

बनी भूमिका जगन्नाथ की, कलि में प्रगटे आय । इन्द्रद्युम्न की भक्ति ने दए, जगन्नाथ बनवाय ॥
बन गयौ बनवारी, ब्रजरस प्रेम भिखारी ।

ब्रज के परम रसिक हैं ठाकुर, ब्रजलीला मन भाँय । रथयात्रा निकले है जब-जब, नृत्य देख हरषाँय ॥
बन गयौ बनवारी, ब्रजरस प्रेम भिखारी ।

बहिन सुभद्रा की मनपूरन, करन कृष्ण बलराम । पुरी-भ्रमण में निकलते, गुण्डीचा विश्राम ॥
बन गयौ बनवारी, ब्रजरस प्रेम भिखारी ।

यात्रा कौ कारन बन्यौ, शुक्ल दूज आषाढ़ । बरष प्रति जन नाचैं-गावैं, ब्रज कौ रस अति गाढ़ ॥
बन गयौ बनवारी, ब्रजरस प्रेम भिखारी ।

जय जगन्नाथ जयकार लगै मन, निर्मल सबकैं होंय । परमदेव कलिकाल में, तुरतहिं अनुभव होय ॥
बन गयौ बनवारी, ब्रजरस प्रेम भिखारी ।

जगन्नाथ जाग्रत ब्रज-विग्रह, सिंचन करैं ब्रजनीर । ब्रजमण्डल-महिमा प्रगट हो, मिटै प्रेम की पीर ॥
बन गयौ बनवारी, ब्रजरस प्रेम भिखारी ।

*राधारानी और श्रीकृष्ण हर कुंजों में बिना कुछ पहने निरावरण चरणों से चल रहे हैं । सारी ब्रजभूमि उनके चरण चिह्नों से छपती जा रही है । **'वृन्दावन एक सुन्दर जोड़ी ।' 'खेलत जहाँ-तहाँ वंशी-वट'** यह जोड़ी क्या करती है ? ब्रजभूमि की लीला स्थलियों में, वंशी-वट, गह्वर वन आदि स्थलों में घूमती है । **'नन्दनन्दन वृषभानुकिशोरी'** ब्रजभूमि के हर कोने, हर स्थल में यह जोड़ी खेल रही है । चौदहों लोकों में जो सुन्दरता थी, वह एकत्रित होकर राधा और कृष्ण बन गयी । **'भुवन चतुर्दश की सुन्दरता, सुन्दर श्याम राधिका गोरी ।'** एक नीली ज्योति है, एक गौर ज्योति है । **'जय श्री भट्ट कहाँ लगि बरनौं, रसना एक न लाख करोड़ी ॥'***

श्रीब्रजभावित रहनी

बाबाश्री द्वारा कथित श्रीराधासुधानिधि-सत्संग (१७/१२/१९९९) से संकलित

भगवन्नाम का सेवन करोगे तो उसमें भी भाव चाहिए । कुछ लोग कहते हैं कि हम प्रतिदिन इतने लाख नाम जप करते हैं । इतने लाख जप तो करते हो किन्तु उसके पहले भाव चाहिए । नाम-जप, नाम-कीर्तन के पहले यह शर्त है – इसमें 'तृणादपि सुनीचेन, तरोरपि सहिष्णुना, अमानिना मानदेन' का भाव होना चाहिए, तब जाकर तुमको नाम जप-नाम कीर्तन का यथार्थ फल नाम रस मिलेगा । गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है – भाव कुभाव अनख आलसहू । नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ । भाव-कुभाव कैसे भी भगवान् का नाम ले लो, दसों दिशाओं में मंगल होगा । यह तो ठीक है किन्तु बिना भाव के नाम लेने में धीरे-धीरे, विलम्ब से नाम के रस की अनुभूति होगी परन्तु रस की अनुभूति शीघ्र ही हो इसके लिए जब भाव पद्धति होगी तब जल्दी फल मिलेगा । भाव के बाद ही नाम रस का अनुभव होगा । इस बात को भगवान् ने गीता में कहा है – **येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।**

ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥ (श्रीगीताजी - ७/२८)

भजन तो सब करते हैं । हर आदमी भजन करता है । पाठ वाला पाठ करता है, जप वाला जप करता है, ठाकुर सेवा वाला ठाकुर सेवा करता है लेकिन द्वन्द्व से छूटकर भजन करना अलग बात है । भगवान् कहते हैं कि पिछले पाप द्वन्द्व पैदा करते रहते हैं । पिछले पाप क्या है, थोड़ा सा अभ्यास बिगड़ गया कि इसने हमको तू कह दिया तो काले साँप की तरह क्रोधित हो गये । अमुक व्यक्ति ने प्रेम किया तो प्रसन्न हो गये, कहने लगे कि यह तो बड़ा अच्छा आदमी है । इस तरह ये जो राग-द्वेष के संस्कार हैं, ये पाप हैं । द्वन्द्व से छूटकर भजन करना ही दृढ भजन है । वह होता है पुण्य कर्म से । पुण्य क्या है ? वह है एकमात्र सत्संग । सत्संग में जाने के बाद ही बोध होता है कि भाव राशि क्या है, द्वन्द्व क्या है, राग क्या है, द्वेष क्या है ? इन सब चीजों का ज्ञान एकमात्र सत्संग से ही होता है । गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी लिखा है – 'पुण्य एक विप्र पद पूजा ।' 'विप्र' माने भगवद्भक्त । जब तुम्हारे पाप जलेंगे तब द्वन्द्व से छूटकर भावराशि पैदा होगी और तब तुमको अनुभव होगा । जैसा कि भागवत के प्रारम्भ में कहा गया है –

शुश्रूषोः श्रद्दधानस्य वासुदेवकथारुचिः । स्यान्महत्सेवया विप्राः पुण्यतीर्थनिषेवणात् ॥ (श्रीभागवतजी १/२/१६)

जब मनुष्य किसी तीर्थ में जाता है तो लोग कहते हैं कि हम बहुत से तीर्थ कर आये, उससे कोई लाभ नहीं होता है । तीर्थ में जाने पर वहाँ जो महापुरुष विराजते हैं, सबसे पहले उनके पास जाना चाहिए । तीर्थ में जाने पर यदि सत्संग किया तब तो तुम्हारा तीर्थ में जाना सफल है । सत्संग में बैठने पर कथा सुनने से तुम्हारी भजन में रुचि हो जायेगी । कथा सुनने से क्या होगा ?

श्रृण्वतां स्वकथां कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्तनः । हृद्यन्तःस्थो ह्यभद्राणि विधुनोति सुहृत्सताम् ॥ (श्रीभागवतजी १/२/१७)

भगवान् का एक नाम है – पुण्यश्रवणकीर्तनः । कान के द्वारा भगवान् भीतर प्रवेश करते हैं । जब कान से तुम भगवत्कथा सुनोगे तो भगवान् भीतर हृदय में प्रवेश करते हैं और हृदय में जाकर अभद्र संस्कारों को जलाते हैं । ये है पुण्य । इसलिए नित्य ही भगवत्कथा सुननी चाहिए ।

नष्टप्रायेष्वभद्रेषु नित्यं भागवतसेवया । भगवत्युत्तमश्लोके भक्तिर्भवति नैष्ठिकी ॥ (श्रीभागवतजी १/२/१८)

जब सत्संग में कथा सुनने से सभी अभद्र जल जाते हैं तो भगवान् के प्रति नैष्ठिकी भक्ति उत्पन्न हो जाती है । नैष्ठिकी भक्ति के आने पर अनुभव हो जाता है । इसलिए जैसा कि रामायण से बताया गया कि भगवान् राम जब प्रवर्षण गिरि पर वास कर रहे थे तो बड़े-बड़े सिद्ध महापुरुष और देवता पशु, पक्षी तथा भँवरे का रूप बनाकर उनकी सेवा करते थे । इसलिये यही भाव राशि है कि धाम में रहने वाले पशु, पक्षी और भँवरों के प्रति भी हृदय से भाव रखे और भाव तभी होगा जब हम सहिष्णु (सहनशील) हो जायेंगे, नहीं तो कोई किसी से तू भी कह दे तो भाव नष्ट हो जाता है और इनकी कृपा मानें तो बहुत जल्दी धाम की कृपा होती है लेकिन ऐसा हो नहीं पाता है । हमारा तो अनुभव है, कितने ही हजारों लोग

यहाँ मान मन्दिर में रह गये । प्रारम्भ में जब आते हैं तो उनका व्यवहार ठीक रहता है । उसके बाद तो मेरा-तेरा में, प्राकृत भाव में फँस जाते हैं और एक-दूसरे की निन्दा करते रहते हैं । इस तरह वे भाव राशि से बहुत दूर चले जाते हैं, फिर तो इस तरह यहाँ रहते हैं जैसे गंगाजी में हजारों-लाखों जलचर प्राणी रहते हैं । उनको भाव से कोई प्रयोजन नहीं, खा-पी लेते हैं और नियमपूर्ति के लिए भजन कर लेते हैं । भावराशि के लिए तो जैसा कि रसिकों ने कहा है –

श्रीराधेरानी मोहि अपनी कर लीजै । और कछु मोहि भावत नाहीं, श्रीराधेरानी मोहि वृन्दावन दीजै ॥

राधारानी ! हमें अपना धाम दे दो । धाम में कैसे रहें ?

खग मृग पशु पंछी या वन के, चरण शरण रख लीजै ।

यहाँ के जितने भी पशु-पक्षी आदि हैं, उन सबके प्रति यही भाव हो जाए कि ये कृष्ण हैं ।

हे वृन्दावन के खग-मृग, पशु-पक्षी आदि जितने भी हैं, तुम मुझे अपने चरणों की शरण में रख लो; ये है भाव ।

व्यास स्वामिनी की छवि निरखत, महल टहलनी कीजै ॥

धाम में जड़-चेतन जितने भी जीव दिखाई देते हैं, उनमें चिन्मयता का भाव रखना चाहिए । जैसे मन्दिर में जाते हैं तो ठाकुरजी की प्रतिमा को केवल पत्थर की मूर्ति नहीं समझते हैं । उनमें यह भाव रखते हैं कि ये साक्षात् भगवान् हैं । उसी प्रकार धाम के जितने भी पदार्थ हैं, वन सम्पत्ति वृक्ष आदि उनमें भी भगवद्भाव रखना चाहिए । भागवत में कथा आती है कि कुबेर के पुत्र नलकूबर और मणिग्रीव नारदजी के शाप से वृक्ष बने थे । एकबार नारदजी कैलाश पर्वत पर गये तो वहाँ ये दोनों नग्न होकर अप्सराओं के साथ गंगाजी में स्नान कर रहे थे । ये दोनों जवान थे, बड़े सुन्दर थे, मद में थे । नारदजी वहाँ से निकले तो उनको देखकर अप्सराओं ने तो अपने वस्त्र पहन लिए किन्तु ये दोनों कुबेर के पुत्र नग्नावस्था में ही जोर-जोर से हँसते रहे क्योंकि इन्होंने मदिरा पी रखी थी । शराब पीने से मनुष्य की चेतना नष्ट हो जाती है । इसीलिए पाँच महापापों में शराब पीना भी एक महापाप है । शराब पीना हत्या करने के समान है । लोग इसे छोटी चीज ही समझते हैं । अरे, यह छोटी चीज नहीं है । हमारे शरीर में चेतना ही मुख्य चीज है । चेतना क्या है ? आत्मा का चैतन्य गुण जब शरीर में, बुद्धि में आता है तो उसको चेतना कहते हैं । उस चेतना को जितना हम बढ़ायेंगे, जागृत करेंगे, उतना ही अन्तर्मुख होंगे, यह समझने की बात है । चेतना को जितना हम छोड़ेंगे, नष्ट करेंगे, उतना ही जड़ हो जायेंगे । जैसे पेड़ में चेतना तो है लेकिन सोयी हुई चेतना है । पेड़ बोल नहीं सकता, देख नहीं सकता । जो शराबी होता है, वह अपनी चेतना नष्ट कर देता है । उसको नशे में यह पता नहीं रहता कि हम कहाँ पड़े हैं, कहाँ लेटे हैं, क्या बोल रहे हैं ? वह अपनी चेतना को मारता है । अपनी चेतना की हत्या कर लेता है । केवल शराबी ही नहीं, अन्य जितने भी नशा करने वाले हैं, गांजा, भांग, सुल्फा का नशा करने वाले – ये सब अपनी चेतना का नाश करते हैं । भाँग का नशा जब अधिक चढ़ जाता है तो आँखें लाल हो जाती हैं । ये क्या है ? ये अपनी चेतना को नष्ट करना है, अपनी हत्या करना है । जबकि भाँग का लोग बहुत महिमा मण्डन करते हैं । इन चीजों का अधिक सेवन आजकल रामानन्दी लोग करते हैं जबकि गोस्वामी तुलसीदासजी ने भांग की निन्दा की है । वे कहते हैं – 'जेहि सुमिरत भयो भाँग ते तुलसी तुलसीदास ।' भाँग के पौधे को गोस्वामीजी ने सबसे नीच पौधा बताया है । इससे पता चलता है कि भाँग का नशा करने वाले लोगों ने पता नहीं रामायण पढ़ी है कि नहीं पढ़ी है और यदि पढ़ी भी है तो वे तुलसीदासजी की बात को नहीं मानते हैं । तुलसीदासजी ने लिखा है कि पहले मैं भाँग जैसा अत्यधिक नीच था । इससे पता चलता है कि वे भाँग के नशे के कितने खिलाफ थे । नशा करना हत्या करने के समान पाप है । इसीलिए जब नलकूबर एवं मणिग्रीव मदिरा के नशे में चूर थे तो नारदजी को देखकर भी नंगे खड़े रहे और हँसते रहे । नारदजी समझ गये कि एक तो ये मदिरा के नशे में मस्त हैं और दूसरा नशा है जवानी का । जवानी में मनुष्य माता-पिता की और गुरु-गोविन्द की बात नहीं मानता है । जब जवानी का नशा चढ़ता है तो कोई शासन करे, यह मनुष्य को बुरा लगता है । जब नारदजी ने देखा है कि ये कुबेर पुत्र जवान हैं, सुन्दर हैं और शराब के नशे में चूर हैं तो उन्होंने उनको शाप दे दिया कि तुम लोग पेड़ बन जाओ । नारदजी के शाप से वे दोनों जड़

योनि को प्राप्त हो गये । इसलिए भागवत पढ़ने के बाद यह विचार करना चाहिए कि जितने भी वृक्ष हैं, इनके भीतर जीव है । भगवान् ने गीता में कहा है – 'अश्वत्थः सर्ववृक्षाणाम्' । मैं सब वृक्षों में पीपल का वृक्ष हूँ । ऐसा क्यों कहा, इसलिए कहा ताकि पीपल को देखने पर उसके प्रति भगवद्भाव उत्पन्न हो जाए । धाम में जो लताओं-वृक्षों की उपासना सिखायी जाती है, वह शास्त्र सम्मत है । यह हमको समझना चाहिए । पद्म पुराण में एक कथा है । इन कथाओं को जानने के बाद निश्चित रूप से वृक्षों आदि में भाव हो जाना चाहिए, इनको जड़ नहीं समझना चाहिए । सतयुग की बात है । इन्द्रप्रस्थ (जिसको वर्तमान में दिल्ली कहते हैं) में एक शीशम का पेड़ था । उस पेड़ पर एक कौवा रहता था और पेड़ की जड़ में एक काला सर्प रहता था । बहुत दिन से ये रह रहे थे । एक दिन बड़े जोर की आँधी आई, उसके कारण वह शीशम का पेड़ उखड़ गया । पेड़ के उखड़ने से उस पर रहने वाले कौवा और साँप दोनों ही मर गये । जब ये तीनों ही मरे तो इनके लिए स्वर्ग से विमान आया और ये तीन - शीशम की आत्मा, कौवा और सर्प की आत्मा, उस विमान पर बैठकर स्वर्ग में चले गये । पूर्व जन्म में एक श्रवण नाम का ब्राह्मण था, उसका एक छोटा भाई था, उसका नाम कुरंटक था । बड़े भाई की स्त्री का नाम कुण्ठा था । एक परिवार में ये तीन व्यक्ति रहते थे । ये तीनों ही निर्दयी और पाप परायण थे । स्त्री दोनों भाइयों को यानी अपने पति और देवर को चलाने वाली थी । वह स्त्री जैसा कहती, वैसा ही उसका पति करता और वैसा ही देवर करता था । प्रायः यह देखने में आता है कि स्त्री जो राय देती है, वह गलत ही देती है । अपने पति को उसके माँ-बाप से अलग कर देती है या छोटी सी बात पर भाई-भाई में झगड़ा करवा देती है । इसके अतिरिक्त अनाचार जैसे चोरी आदि की भी शिक्षा देती है । एक दिन जब इनकी मृत्यु हुई तो अपने पापों के कारण अगले जन्म में वह स्त्री ही बनी शीशम का पेड़, उस पेड़ पर बैठने वाला कौवा उसका पति था तथा जो काला सर्प पेड़ की जड़ में रहता था, वह देवर था । पहले भी ये दोनों भाई उस स्त्री के आश्रय में रहते थे और अब इस जन्म में वह स्त्री पेड़ बन गयी तो ये दोनों भाई कौवा और सर्प बनकर उस स्त्री रूपी पेड़ के ही आश्रय में रहते थे । काले सर्प की हजारों वर्ष की आयु थी, शीशम का पेड़ भी हजारों वर्ष का था और कौवा भी हजारों वर्ष तक जिया । अपने पूर्व जन्म के पापों के कारण ये तीनों लम्बे समय तक इन योनियों में यातना भोगते रहे किन्तु आँधी आने पर ये तीनों मरकर स्वर्ग में क्यों चले गये ? इसका एक कारण था । कभी-कभी अनजान में मनुष्य के द्वारा ऐसा पुण्य भी हो जाता है, जिसके कारण उसका उद्धार हो जाता है । जैसे कभी पाप बड़ा हो जाता है तो वैसे ही कभी-कभी पुण्य भी बड़ा हो जाता है । वह एक ही पुण्य मनुष्य को तार देता है । एक बार किसी अनजान पथिक सन्त का सामान एक कुएँ में गिर पड़ा था । उस स्त्री ने अपने पति और देवर से कहा कि इन सन्त का सामान कुएँ से निकाल दो । पति और देवर उसकी बात को मानकर कुएँ से सामान निकालने लगे क्योंकि वह स्त्री जैसा कहती थी, ये दोनों वैसा ही करते थे । उन दोनों ने सन्त का सामान कुएँ से निकाल दिया, यह उनसे एक पुण्य हो गया । मान लो किसी सन्त के पास एक बाल्टी है, उसी में वह रोटी माँगकर खाता है, उसी से पानी पीता है और स्नान करता है तो उसकी सारी गृहस्थी तो वह बाल्टी ही है । कोई अन्य सामान उसके पास नहीं है । ऐसी स्थिति में उसकी बाल्टी को बचा लेना मतलब कि लाखों रुपये के दान के बराबर हो गया क्योंकि एक बाल्टी ही तो उसकी गृहस्थी है । इन तीनों ने उस बाल्टी की रक्षा कर दी तो बहुत बड़ा पुण्य हो गया, सैकड़ों बर्तनों के दान से भी बढ़कर हो गया । इसी पुण्य का ही प्रताप था कि अपने अगले जन्म में जब ये तीनों पेड़, कौवा और सर्प बने तो मृत्यु के पश्चात् इनके लिए स्वर्ग से विमान आया और उस पर बैठकर ये स्वर्ग को चले गये । यह कथा पद्म पुराण में इन्द्रप्रस्थ तीर्थ के माहात्म्य में वर्णित है । इस कथा से पता पड़ता है कि ब्रज में जो लता-वृक्षों के प्रति भाव रखना सिखाया गया है, यह पूर्णतया शास्त्रीय है । इसके अलावा पद्म पुराण में गीता का माहात्म्य भी वर्णित है । उसमें गीता के चौथे अध्याय के माहात्म्य के सम्बन्ध में एक कथा है कि काशी में विश्वनाथजी का मन्दिर है । उसमें एक महात्मा नित्य ही गीता के चौथे अध्याय का पाठ करते थे । वे गीता को मानने वाले और गीता के अनुसार आचरण करने वाले क्रियात्मक सन्त थे । वे कभी द्वन्द्वों में व्यथित नहीं होते थे । एक दिन वे अपनी कुटिया से बाहर निकले । उस कुटिया के पास में ही दो बेर के पेड़ थे । दोनों पेड़ बिलकुल पास-

पास थे । वे महात्मा कुटिया से बाहर निकलकर उन दोनों बेर के पेड़ों के नीचे लेट गये । एक पेड़ के नीचे उन्होंने अपना मस्तक रखा और दूसरे पेड़ की जड़ पर अपना पाँव रखा । अब जैसा कि रामायण में उल्लेख है – सन्त दरस ते पातक टरई । सन्तों के दर्शन अथवा स्पर्श से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं । उन सन्त के सिर और पाँव के स्पर्श के प्रभाव से पाँच-छः दिन बाद वे दोनों पेड़ सूख गये, उनका जीवन समाप्त हो गया । इसके बाद उन बेरिया के पेड़ों का किसी घर में अगला जन्म हुआ और वे दोनों कन्या बनीं । उन सन्त का नाम था भरत मुनि । जब ये लड़कियाँ सात वर्ष की हो गयीं तो एक बार ये अपने माता-पिता के साथ वन में घूमने गयी थीं । उस वन में उन्होंने अचानक भरत मुनि को देखा । उनको देखते ही ये कन्यायें भरत मुनि के चरणों में गिर पड़ीं और बोलीं – 'महाराज-महाराज ! हम आपकी शरण में हैं । आपने हमारा उद्धार कर दिया, नहीं तो हमको लाखों वर्षों तक भोगना पड़ता ।' भरत मुनि बोले – 'मैंने तुम्हारा उद्धार कब किया ?' उन लड़कियों ने कहा – 'सात वर्ष पहले हम दोनों यहाँ बेर के पेड़ के रूप में थीं । एक दिन आप आकर हमारे नीचे सो गये । आपके शरीर के स्पर्श के प्रभाव से हमारी जड़ योनि समाप्त हो गयी और अब कन्या के रूप में हमारा जन्म हुआ है । अब आपकी कृपा से हम दोनों स्वर्ग पहुँच जायेंगी ।' भरत मुनि ने उनसे पूछा कि तुम दोनों पेड़ क्यों बनी थी ? तुमने ऐसा क्या पाप किया था, जिसके कारण तुम दोनों हजारों वर्षों तक बेर का पेड़ बनी रहीं ? कन्याओं ने कहा कि उसके पूर्व जन्म में हम लोग बड़ी सुन्दर अप्सराएँ थीं । एक ऋषि तपस्या कर रहे थे । उनकी तपस्या में हम दोनों ने विघ्न किया । जब बहुत विघ्न किया तो उन ऋषि ने कहा – 'अरे, तुम लोग अप्सरा होकर ऐसा निकृष्ट कार्य करती हो । जाओ, तुम वृक्ष बन जाओ ।' हमने उन ऋषि के चरणों में गिरकर अपने अपराध के लिए क्षमा माँगी तो उन्होंने कहा कि जब कोई तेजस्वी सन्त तुम्हें छू देगा तो उससे तुम्हारा कल्याण हो जाएगा । ऋषि के शाप से हम दोनों वृक्ष बन गयीं । जब हम लोग बेरिया के पेड़ बनी थीं तो एक बार आप आये और हमारे नीचे थोड़ी देर के लिए सोये । आपके शरीर का हमें स्पर्श हुआ, उस पुण्य के प्रभाव से हमारा कल्याण हो गया । अब हम कन्या बनी हैं और अनुष्ठान करके बहुत शीघ्र स्वर्ग पहुँच जायेंगी । अब इन कथाओं में पहली कथा कुबेर पुत्रों की थी, जो नारदजी के शाप से यमलार्जुन वृक्ष बने थे, दूसरी कथा कुण्ठा स्त्री और उसके पति व देवर की थी, जो पेड़ बन गये थे । तीसरी कथा पद्म पुराण के गीता माहात्म्य में दो बेर के पेड़ों की थी । इन कथाओं से पता चलता है कि ये वृक्ष जीव हैं, इनको सताना नहीं चाहिए, इनमें भाव रखना चाहिए । विशेष तौर से धाम के वृक्षों में चिन्मयता का भाव रखना चाहिए । इससे इनका आशीर्वाद मिलता है । ये बातचीत भी करते हैं । ब्रज वृन्दावन धाम में रहते समय ऐसा भाव रखना चाहिए कि यहाँ के लता-वृक्ष दिव्य हैं । ये राधा करावचित पल्लव वल्लरीके हैं । इनके पत्तों को श्रीजी ने अपने करकमलों से सजाया है । इस धाम के जितने भी पशु-पक्षी हैं, ये राधा यशो मुखर मत्त खगावलीके हैं । ये राधारानी के यश का गान करते हैं । यहाँ की जितनी भी स्थलियाँ हैं, ये राधा पदाङ्क विलसन् मधुरस्थलीके हैं । यहाँ के मधुर स्थल श्रीजी के चरण चिह्नों से चिह्नित हैं । इस प्रकार के भाव के साथ इस धाम में रहे । इसको कहते हैं वृन्दावन या ब्रजवास । इस तरह – 'राधा विहार विपिने रमतां मनो मे' – हे राधारानी ! आपके इस विहार विपिन में हमारा मन रमण करे ।

गौ-सेवकों की जिज्ञासा पर माताजी गौशाला का

Account number दिया जा रहा है –

SHRI MATAJI GAUSHALA,

GAHVARVAN,BARSANA, MATHURA

Bank – Axis Bank Ltd , A/C – 915010000494364

IFSC – UTIB0001058, BRANCH – KOSI KALAN,

MOB. NO. -9927916699

श्रीराधामानबिहारिणे नमः
WWW.MAANMANDIR.ORG
मेरी महारानी श्री राधा रानी
राणा जी मैं तो गोविन्द के गुण गाणा
रसिया गायन
राधे किशोरी दया करो
-: स्थान :-
श्रीराधा रासमण्डप
श्रीमान मंदिर (बरसाना)
LIVE ON
MAANMANDIR
परम पूज्य श्रीरमेश बाबाजी महाराज

!! श्री राधा मानबिहारी लाल जयते !!
नित्य दिव्य संकीर्तन
9 pm
ब्रज रस रसिक
परम विरक्त संत पद्मश्री परम पूज्य
श्री रमेश बाबा जी महाराज
LIVE
Live on
श्री माताजी गौशाला

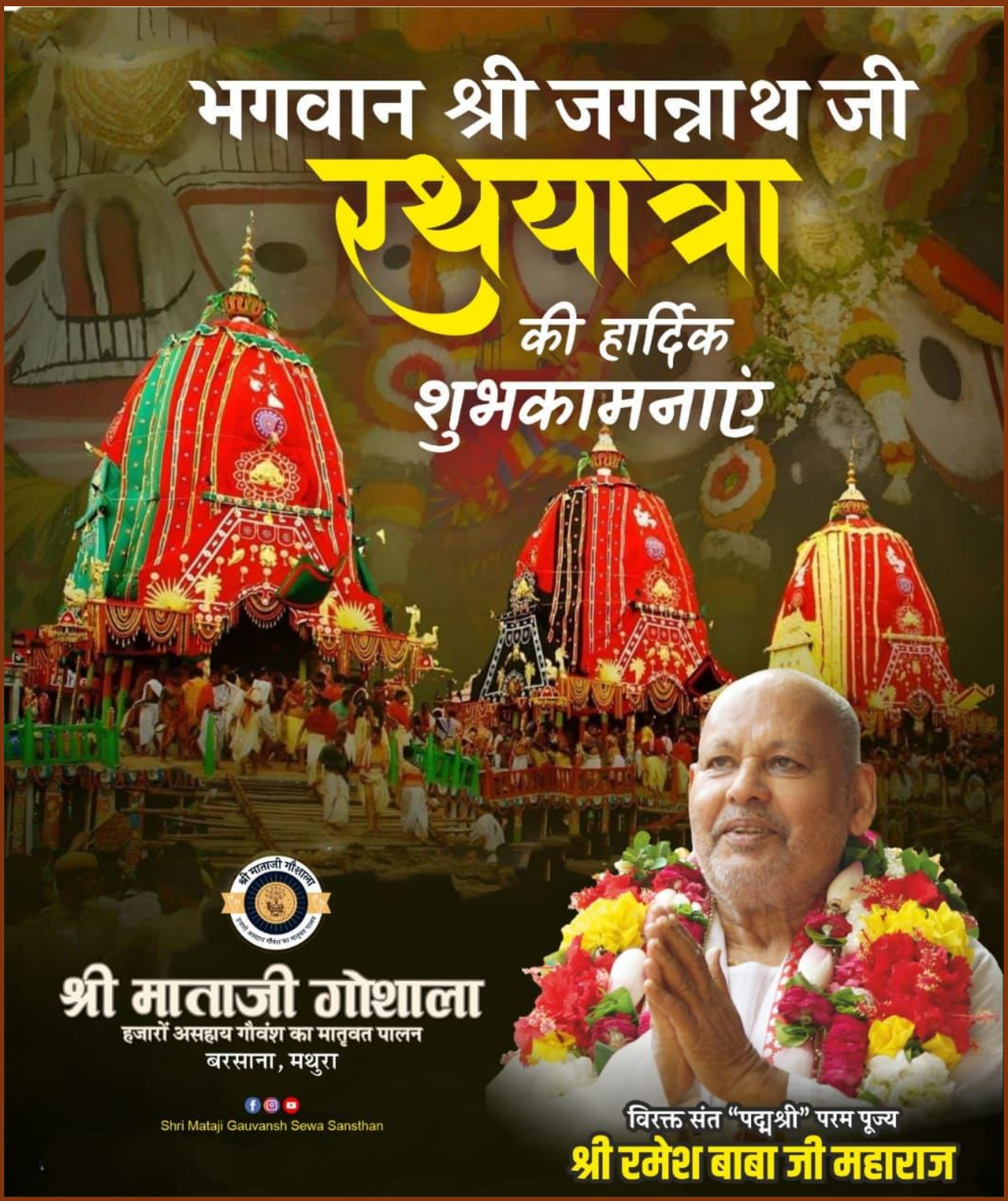

RNI REFERENCE NO. 1313397- REGISTRATION NO. UP BIL-2017/72945-TITLE CODE UP BIL-04953 POSTAL REGD.NO. 093/2024-2026 श्री मान मन्दिर सेवा संस्थान के लिए प्रकाशक/मुद्रक एवं संपादक राधाकांत शास्त्री द्वारा 'गुप्ता प्रिन्टिंग प्रेस, खरौट गेट, कोसीकलाँ, मथुरा. उत्तरप्रदेश' से मुद्रित एवं मान मन्दिर सेवा संस्थान, गह्वरवन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.) से प्रकाशित,AGRA/WPP-12/2024-2026 AT 31.12.26